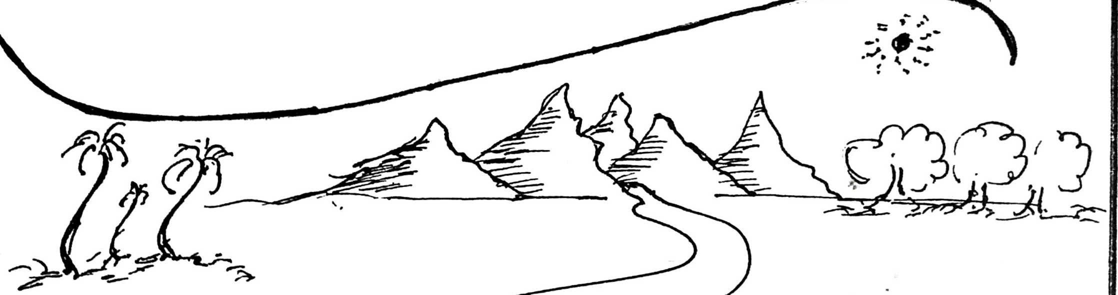
"जो पद श्री सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में
कह नहीं सके उसको श्री भगवान भी;
उस स्वरूप को अन्य वाणी तो क्या कहे?
अनुभवगोचर रहा केवल वह ज्ञान रे...."

• श्रीमद् राजचन्द्रजी •

अनुभूतियों की अकथ्य अभिव्यक्तियों की विश्वात्मा विमलाजी के अंतस्तलों में स्वल्प सहयात्रा

# अंतर्यात्रा ~ विमलसरिता सह



विश्वव्याप्त चेतनालोक के चिदाकाश के नीचे चिन्मयगान का चिर-गुञ्जन करती, स्थल स्थल बहती, पल पल उछलती, कलकल निनादिनी, विश्वविशालिनी विमलादीदी की तीर्थसलिला विमल-जीवन-सरिता के चंद अंतस्तलों में स्वयंचेतना के अंतःस्नान सह पावनकारी स्वल्प अंतर्यात्रा........विराट विशाल महानद-सी विमल-सरित की गहराइयों भरे गहरे पानी में पैठने की थोड़ी-सी डुबकियाँ........ केवल एक झलक और झाँकी मात्र के रूप में.....जो परिशुद्ध कर गई, पावन कर गई इस नन्हे पगले अंतर्यात्री की अल्प-सी जीवनसरिता को ~ जो बीच बीच में विगत 54 वर्षों तक बहती रही 1954 से.......!

" प्राप्तकर्म करते हुए भी, लुप्त करे न निजभान।
समाधिस्थ जीवन बहे, निर्ग्रंथ दशा वह जान ॥

" कषाय की उपशान्तता, मात्र स्वरूप का भान।
मोक्षधर्म चूके नहीं, वह आत्मार्थी जान ॥ "

• श्रीमद् जी की 'आत्मसिद्धि' की अनुभूत अभिव्यक्ति में विमलादीदी •

© प्रा. प्रतापकुमार ज. टोलिया
बेंगलोर
[080-26667882/65953440/09611231580]
9845006542



# विश्वात्मा विमलादीदी : परिचय झाँकी - स्वानुभव के प्रकाश में

विश्वमानव - विश्वात्मा बन चुकी विदुषी सुश्री विमला ताई ठकार को कौन नहीं जानता ?

एकाध बार भी उनके प्रवचन-श्रवण का जिन्हें लाभ मिला हो या उनकी एकाध पुस्तक-कृति पढ़ी भी हो, वे उन्हें जीवनभर नहीं भुला सकेंगे। क्योंकि उनकी ओज-प्रासाद-माधुर्य युक्त परावाणी में ऐसा प्रभाव, ऐसा चुंबकत्व था कि श्रोता उनकी आंतर-चेतना से सहज ही जुड़ जाता! वाणी तो क्या, उनके सान्निध्य में मौनयात्रा में बैठना भी अपने निजी आनंदानुभव और अंतःशांति पाने का एक ऐसा अवसर बन जाता कि जीवन का वह चिरस्मरणीय "धन्य" क्षण बना रहता !! जिन जिन को यह दुर्लभ अवसर प्राप्त हुआ है वे स्वयं धन्य बन गये हैं, कृतार्थ बन गये हैं।

उच्च कोटि की विरल विदुषी, मौलिक चिंतक एवं आत्मानुभव-संप्राप्त जीवनसाधिका विमलाबेन - विमला ताई - ठकार का देहजन्म रामनवमी 15 अप्रैल 1921 के दिन विदर्भ - महाराष्ट्र के आकोला जिले में हुआ। रायपुर - नागपुर में अप्रतिम स्वयं-पुरुषार्थ से एम.ए. दर्शनशास्त्र तक अध्ययन हुआ। प्रायः 88 वर्ष की सजग, प्रकाशमय, स्वयंज्योतिर्गामिनी जीवनयात्रा सानन्द संपन्न कर उन्होंने उसी 'सजग', "देह होते हुए भी देहातीत" अवस्था को अंतिम क्षण तक जीते जीते 11 मार्च 2009 - फाल्गुन पूर्णिमा एवं चैतन्य महाप्रभु की जयंती की प्रातः पांच बजे की "पूर्णा तिथि" की अमृतवेला में सहज-समाधिमय, स्वैच्छिक देहत्याग किया।

"अंतः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो" वाली आत्मसत्ता - चैतन्यसत्ता बहिर्जगत में विश्वरूपा - विश्वात्म स्वरूपा बन गई ! एक अर्थ में अपनी स्वतंत्र आत्मसत्ता कायम रखते हुए भी उनकी जीवनज्योति विश्वचेतना की महाज्योति में मिल गई !! विश्वात्मा बन गई !!! जाते जाते उन्होंने श्रीमद् राजचन्द्रजी-प्रदत्त स्वात्मानुभव प्रदायक, सर्वसाधना-सर्वधर्म मान्य ऐसे "सहजात्म स्वरूप परमगुरु" मंत्र को विश्वव्यापक रूप देते हुए नूतन रूप दिया — "सहजात्म स्वरूप ही गुरु तत्त्व। जीवन ही परमगुरु। अपनी समझ को ही गुरु बनायें।"



जिस चिन्मय गान को उन्होंने जीवनभर जिस मृणमय साज पर गाया था वह मृणमय साज — मिट्टी आदि पंच महाभूतों का साज — अब शांत हो गया है, सदा के लिये सो गया है....! अब वह नहीं कभी झंकृत होगा, न कभी मुखरित होगा....!! वह तो अब महामौन में, चिरमौन में सोया रहेगा....!!!

यह वही साज है जिस पर स्वयं चिन्मय गान बनकर, सदा जिसे जतन से छेड़ा करती थीं वे। वह यही माध्यम रहा है जिस से उन का चेतना-गान गुंजित-अनुगुंजित-स्पन्दित होता रहा था...। बरसों पहले यही तो लिखा था मानों अपना आत्म-परिचय अभिव्यक्त करते हुए, उन्होंने अपने 22-5-1966 के पत्रकाव्य में —

"मत पूछो मुझे कि क्या हूँ मैं और कौन हूँ मैं ?
मृणमय साज पर बजाया चिन्मय गान हूँ मैं!
विश्वचेतना की वीणा का एक सहज स्पन्दन हूँ मैं,
विधाता की एक कविता हूँ, छंदों का निजछंद हूँ।
मिलो, मुझे सब मिलो, सुनो मेरे श्वासों में झंकृत गीत सुनो;
आकाश का आलंबन हूँ, रूपातीत का स्वरूप हूँ।
देखो, मुझे सब कोई देखो, दर्पण हूँ मुझ में निज रूप देखो।
चिन्मय गान हूँ मैं।"

["विमल संस्मरण" पृ. 91 : प्रभावन पत्र में]

इस चिन्मय गान और मृणमय साज की कहानी बड़ी लंबी है, निराली है, विलक्षण है, विशाल और विराट है विश्वभर में फैली हुई! चिन्मयता की विरल विभूति विमला जी तो स्वयं शायद अपने आत्म-परिचय में इतना ही कहना चाहेंगी महादेवीजी के शब्दों में कि —

"परिचय इतना इतिहास यही,
उमड़ी कल थी मिट आज चली, मैं नीरभरी दुःख की बदली!"

परंतु विमलाजी की यह जीवन-बदली दुःख से भरी हुई नहीं थी —

अनेक दुःखों, कष्टों, संघर्षों, परिषहों आदि को झेलते, उभरते हुए भी! दुःख अगर था भी, तो उन्होंने दुःख को दुःख माना नहीं था, एक अवसर, एक चुनौती, एक आनन्द-पर्व माना था। फिर विश्वव्यापी बन चुकी उनकी चेतना में निजी दुःख-वैयक्तिक दुःख और पराया दुःख ऐसा खंड रहा ही कहाँ था? अनेकों हजारों हजारों जनों के दुःखों को उनकी 'समरसता भरी सहज करुणा' ने अपना ही दुःख जब बना लिया था। आत्मसात् कर लिया था।

उनके इस चिन्मय-मृणमय जीवनगान के चंद स्वरों में ही उनकी थोड़ी-सी जीवन-झाँकी हम प्राप्त करेंगे।

आकोला में देहजन्म के बाद मध्यप्रदेश के रायपुर के निकट उनके नाना के पास जहाँ उनका बचपन बीता वहाँ स्वामी विवेकानंद और अन्य संतों-विद्वद्जनों का पदार्पण सदा होता रहता था। ऐसे निमित्तों में प्रसरित आर्यजीवन एवं भारतीय दर्शनों के सात्त्विक वातावरण में उनके पूर्वजन्मों के संचित पुण्य रूप पूर्वसंस्कार नवपल्लवित होने लगे और बाल्या-वस्था से ही उनकी आत्मखोज प्रारम्भ हो गई। वे स्वयं लिखती हैं ~

" छठवे वर्ष में प्रवेश करते ही मेरी अनंतयात्रा प्रारम्भ हो गई। बुद्धि से ईश्वर को पहचानूँ उस से पूर्व ही हृदय में ईशसत्ता व्याप्त हो गई। विद्यालय में अभ्यास चलता रहे, घर में घरकाम चलता रहे, परंतु मेरा मन योगोपनिषद् दासबोध, एकनाथी भागवत, स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानंद आदि के ग्रंथों में डूबा हुआ रहता। जंगल में जाकर, दक्षिणेश्वर जाकर और फिर कभी घर से भाग जाकर भी मैंने अपनी खोज जारी रखी है।

" मैंने सातवे वर्ष में ही प्रसिद्ध स्वामी श्री योगीराज सीतारामदासजी के पास से अष्टांग योग की शिक्षा प्राप्त की।

अनेक दुःखों, कष्टों, संघर्षों, परिषहों आदि को झेलते, उत्तरते हुए भी! दुःख अगर था भी, तो उन्होंने दुःख को दुःख माना नहीं था, एक अवसर, एक चुनौती, एक आनन्द-पर्व माना था। फिर विश्वव्यापी बन चुकी उनकी चेतना में निजी दुःख-वैयक्तिक दुःख और पराया दुःख ऐसा खंड रहा ही कहाँ था? अनेकों हजारों हजारों जनों के दुःखों को उनकी 'समरसता भरी सहज करुणा' ने अपना ही दुःख जब बना लिया था, आत्मसात् कर लिया था।

उनके इस चिन्मय-मृण्मय जीवनगान के चंद स्वरों में ही उनकी थोड़ी-सी जीवन-झाँकी हम प्राप्त करेंगे।

आकोला में देहजन्म के बाद मध्यप्रदेश के रायपुर के निकट उनके नाना के पास जहाँ उनका बचपन बीता वहाँ स्वामी विवेकानंद और अन्य संतों-विद्वद्जनों का पदार्पण सदा होता रहता था। ऐसे निमित्तों में प्रसरित आर्यजीवन एवं भारतीय दर्शनों के सात्त्विक वातावरण में उनके पूर्वजन्मों के संचित पुण्य रूप पूर्वसंस्कार नवपल्लवित होने लगे और बाल्यावस्था से ही उनकी आत्मखोज प्रारम्भ हो गई। वे स्वयं लिखती हैं ~

"छठवे वर्ष में प्रवेश करते ही मेरी अनंतयात्रा प्रारम्भ हो गई। बुद्धि से ईश्वर को पहचानूँ उस से पूर्व ही हृदय में ईशसत्ता व्याप्त हो गई। विद्यालय में अभ्यास चलता रहे, घर में घरकाम चलता रहे, परंतु मेरा मन योगोपनिषद्, दासबोध, एकनाथी भागवत, स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानंद आदि के ग्रंथों में डूबा हुआ रहता। जंगल में जाकर, दक्षिणेश्वर जाकर और फिर कभी घर से भाग जाकर भी मैंने अपनी खोज जारी रखी है।

"मैंने सातवे वर्ष में ही प्रसिद्ध स्वामी श्री योगीराज सीतारामदासजी के पास से अष्टांग योग की शिक्षा प्राप्त की।

"सर पर आकाश का मंडल है, धरती पर सुहानी मखमल है।
दिन को सूरज की मेहफिल है, शब (रात्रि) को तारों की सभा बाबा।"

स्वामी रामतीर्थ जैसे ज्ञानी के ऐसे कुदरत के दरबार में विमलाजी का एकान्तसाधन-गुफावास आनन्द के साथ महान साहस, जोखिम और हिंमत से भरा हुआ था! कल्पना कर सकते हैं एक युवती का ऐसे स्थान में अकेले-एकाकी रहने की? उस मृणमय मिट्टी के साज में कौन-सी, किसकी, शक्ति भरी होगी? ॐकृति पाती होगी? वहाँ कोई आराम-आमोद-प्रमोद का, सुविधा भरा निवास नहीं था। भोजन के लिये थे निकट के फल कन्दमूल और ओढ़ने-बिछाने के लिये एक-दो कम्बल!! स्वामी रामतीर्थ की उस साधनसिद्ध शिला पर अठारह अठारह घंटों तक जमी रहती उनकी ध्यानातपस्या-मय बैठक-"आसन सो मत डोल" वाली!!!

यह वही स्थान था गंगा तट का जहाँ से दीपावली के अपने देहजन्म के दिन पर ही स्वामी रामतीर्थ ने जल समाधि लेकर देहत्याग कर दिया था और अपने देह को गंगा में बहा दिया था, मृत्यु को यह चुनौती देकर कि "ए मौत! बेशक उड़ा दे इस जिस्म को, मेरे और अजसाम भी कुछ कम नहीं।"

यह कैसा योगानुयोग कि स्वेच्छा से नहीं किन्तु एक दुर्घटनावश विमलाजी का शरीर यहाँ से गंगा में बह गया था, किसी संन्यासी ने दूर उन्हें बचाकर बाहर निकाल लिया था और स्वामी शिवानन्द के ऋषिकेश के आश्रम में और बाद में घर लाकर उनके शरीर के सुदीर्घ उपचार करने पड़े थे। कानपुर के कालेजजीवन के विद्याभ्यास काल की ऐसी घटनाओं के उपरान्त वे अपने आंतरजीवन की उपनिषदों-सूफीसंतों के जीवन-चरित्रों-रवीन्द्रनाथ टैगोर शरदबाबु की साहित्यकृतियों की अध्ययन-यात्रा एवं नियमित एकाकी एकान्त साधना बराबर चलाये रखती थीं। तो कालेज के बाह्यजीवन की आवश्यकताएँ और मर्यादाएँ भी अपने ट्युशन देने आदि अर्थोपार्जन कार्य के साथ साथ, वे बखूबी निभा लेती थीं। इन सभी बाह्यांतर साधनाओं से विमलाजी बनने जा

"सर पर आकाश का मंडल है, धरती पर सुहावी मखमल है।
दिन को सूरज की महफ़िल है, शब (रात्रि) को तारों की सभा बाबा।"

स्वामी रामतीर्थ जैसे ज्ञानी के ऐसे कुदरत के दरबार में विमलाजी का एकान्त साधन-गुफावास आनन्द के साथ महान साहस, जोखिम और हिंमत से भरा हुआ था! कल्पना कर सकते हैं एक युवती का ऐसे स्थान में अकेले-एकाकी रहने की? उस मृणमय मिट्टी के साज में कौन-सी, किसकी, शक्ति भरी होगी? ॐकृति पाती होगी? वहाँ कोई आराम-आमोद-प्रमोद का सुविधा भरा निवास नहीं था। भोजन के लिये थे निकट के फल कन्दमूल और ओढ़ने-बिछाने के लिये एक-दो कम्बल!! स्वामी रामतीर्थ की उस साधनसिद्ध शिला पर अठारह अठारह घंटों तक जमी रहती उनकी ध्यानावस्था-मय बैठक—'आसन सों मत डोल' वाली!!!

यह वही स्थान था गंगा तट का जहाँ से दीपावली के अपने देहजन्म के दिन पर ही स्वामी रामतीर्थ ने जल समाधि लेकर देहत्याग कर दिया था और अपने देह को गंगा में बहा दिया था। मृत्यु को यह चुनौती देकर कि "ऐ मौत! बेशक उड़ा दे इस जिस्म को, मेरे और अजसाम भी कुछ कम नहीं।"

यह कैसा योगानुयोग कि स्वेच्छा से नहीं किन्तु एक दुर्घटनावश विमलाजी का शरीर यहाँ से गंगा में बह गया था, किसी संन्यासी ने दूर उन्हें बचाकर बाहर निकाल लिया था और स्वामी शिवानन्द के ऋषिकेश के आश्रम में और बाद में घर लाकर उनके शरीर के सुदीर्घ उपचार करने पड़े थे। कानपुर के कालेजजीवन के विद्याभ्यास काल की ऐसी घटनाओं के उपरान्त वे अपने आंतरजीवन की उपनिषदों-सूफ़ीसंतों के जीवन-चरित्रों-रवीन्द्रनाथ टैगोर शरदबाबु की साहित्यकृतियों की अध्ययन-यात्रा एवं नियमित एकाकी एकान्त साधना बराबर चलाये रखती थीं। तो कालेज के बाह्यजीवन की आवश्यकताएँ और मर्यादाएँ भी अपने ट्युशन देने आदि अर्थोपार्जन कार्य के साथ साथ वे बखूबी निभा लेती थीं। इन सभी बाह्यांतर साधनाओं से विमलाजी बनने जा



गांधीजी, विनोबाजी, दादा धर्माधिकारी, जयप्रकाशजी, साने गुरुजी, ओंकारनाथ ठाकुर, जे. कृष्णमूर्ति, रविशंकर महाराज, गुरुदयाल मल्लिकजी, पंडित सुखलालजी आदि आदि अनेक पुण्यश्लोक पुरुषों के साथ अपनी अनंत की खोज की जीवनयात्रा चलाये रखी। दादा (एवं ओंकारनाथजी) ने उन्हें आकर्षण [illegible] विवेकानंद कथित भारत के 'दरिद्रनारायण' की सेवा। गांधी-दर्शन से और 'दीन-पतित, दुर्बल चित्त, धूलि-पतित' सामान्य भारतजन के उत्थान की समान-समन्वित-संतुलित समाजजीवन में क्रान्ति-परिवर्तन की सम्भावना। विनोबा के विकसित गांधी-दर्शन-भूदान दर्शन-सर्वोदय दर्शन से उन्हें प्राप्त हुई। भूदान-सर्वोदय दर्शन में उन्हें आध्यात्मिक क्रान्ति का आयाम दिखाई दिया कि जिस आध्यात्मिक क्रान्ति की वे स्वप्नद्रष्टा थीं, आजीवन स्वप्नद्रष्टा, क्रान्तद्रष्टा।

जीवन के भीतर क्रान्ति की आग भरे हुए जीवन के, विद्रोह भरे युवावस्था के आठ वर्ष उन्होंने भूदान आन्दोलन को समर्पित किये — जो अनगिनत कष्टों और अग्निपरीक्षाओं से भरी एक रोमांचक तूफानी दास्तान है। इस आंदोलन के दौरान उन्होंने भारत के चप्पे चप्पे का पैदल और मोटरों-जीपों में-ट्रेनों की मालगाड़ियों में भी तूफानी दौरा किया। क्रान्ति की आग झरती वाणी में हजारों और लाखों की जनसभाएँ सम्बोधित कीं। फिर आंदोलन में और बाद के जीवन में जो उनके साथ सत्कार्य करने या सत्जीवन जीने के लिये, विशेषकर जो बहनें आयीं, उन्हें उन्होंने सामर्थ्य कर जिस भाषा में ललकारा उसे देखकर स्वामी रामतीर्थ और संत कबीर की अक्खड़ वाणी याद आ जाती है — "बैठे हैं तेरे दर पे, तो कुछ करके उठेंगे।
या वस्ल ही हो जाएगा, या मरके उठेंगे।" (स्वामी राम)

"कबिरा खड़ा बाजार में, लिये लुकाठी हाथ।
जो घर फूंके आपना, सो चले हमारे साथ।" (कबीर)

यथ अहंकार का घर जलाकर, मौत के दीवाने बनकर,

मूलतया में

सर्वोदय का भूदान-ग्रामदान ग्राम स्वराज्य का मर्म समझाया था।

"करिया या मरिय सब छोड़-छाड़ कर निकल कर [illegible]"

'वस्ल' के पागल बनकर, 'करेंगे या मरेंगे' की फौलादि इच्छाशक्ति लेकर, 'इन्किलाबे आग' में कूद पड़ने का आह्वान जो विमलाजी ने अपनी इस कविता में दिया है, वह देखते ही बनता है —

"इन्किलाबे-आग हैं हम, खेल हम से मत करो,
खेल ही के खेल में जल जायगा घरबार सारा,
दिल्लगी कोई मत करो।
आंच में इस आग की, धोखे से कोई आ गया,
खोकर अमन और चैन को, लुत्फ़-तबाही पा गया!
इश्क के परवाने हैं हम, मौत के दीवाने हैं,
शौक़ अगर जीने से है तो दूर हमसे सब रहो,
इन्किलाबे-आग हैं हम, खेल हम से मत करो।"

["मौन के मनुनाद": नूतन संस्करण अमेरिका बरखा 2014 : पृ. 16]

मौत को मुट्ठी में लेकर, इन्किलाब की, क्रान्ति की आग में कूदना होता है। विमलाजी खुद ऐसे ही कूदी थीं और अपनी खुदी को, हस्ती को मिटाकर स्वयं ही इन्किलाब की आग का मानो एक जलता-भड़कता शोला-सा बन गई थीं। इस पंक्ति लेखक की भाँति अनेक साक्षी हैं उनकी उन दिनों की क्रान्ति की आग उगलती उस धमनी के। लेकिन इस आग ने औरों को "जला देने" के बजाय "जगा दिया" था। आखिर यह "सत्य, प्रेम और करुणा" भरे बाबा विनोबा के महामिशन की वाणी थी। प्रेम — मानवीय प्रेम उसके केन्द्र-स्थान में था और यह "प्रेम" एक प्रचंड अक्खड़ रूप लेकर उमड़ा था इस नव-दुर्गा के मुख से। ऐसे "अक्खड़-प्रेम" के पूजक अक्खड़ कबीर ने भी ऐसी ही आगभरी प्रेम-बानी में पाखंडों को ललकारा था —

"कबीर यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहीं" — कहकर।



गांधीजी, विनोबाजी, दादा धर्माधिकारी, जयप्रकाशजी, साने गुरुजी, ॐकारनाथ ठाकुर, जे. कृष्णमूर्ति, रविशंकर महाराज, गुरुदयाल मल्लिकजी, पंडित सुखलालजी आदि आदि अनेक पुण्यश्लोक पुरुषों के साथ अपनी अनंत की खोज की जीवनयात्रा चलाये रखी। दादा एवं ॐकारनाथजी ने उन्हें आकर्षण मार्ग... विवेकानंद कथित भारत के 'दरिद्रनारायण' की सेवा। गांधी-दर्शन से और 'दीन-पतित, दुर्बल चित्त, धूलि पतित' सामान्य भारतजन के उत्थान की समान-समन्वित-संतुलित समाजजीवन में क्रान्ति-परिवर्तन की सम्भावना। विनोबा के विकसित गांधी-दर्शन-भूदान दर्शन - सर्वोदय दर्शन से उन्हें प्राप्त हुई। भूदान-सर्वोदय दर्शन में उन्हें आध्यात्मिक क्रान्ति का आयाम दिखाई दिया कि जिस आध्यात्मिक क्रान्ति की वे स्वप्नदृष्टा थीं, आजीवन स्वप्नदृष्टा, क्रान्तदृष्टा।

जीवन के भीतर क्रान्ति की आग भरे हुए जीवन के, विद्रोह भरे युवावस्था के आठ मूल्यवान वर्ष उन्होंने भूदान आन्दोलन को समर्पित किये - जो अनगिनत कष्टों और अग्निपरीक्षाओं से भरी एक रोमांचक, तूफानी दास्तान है। इस आंदोलन के दौरान उन्होंने भारत के चप्पे चप्पे का पैदल और मोटरों-जीपों में - ट्रेनों की मालगाड़ियों में भी तूफानी दौरा किया। क्रान्ति की आग झरती वाणी में हजारों और लाखों की जनसभाएँ सम्बोधित कीं। फिर आंदोलन में और बाद के जीवन में भी जो उनके साथ सत्कार्य करने या सत्जीवन जीने के लिये, विशेषकर जो बहनें आयीं, उन्हें उन्होंने सामर्थ्य कर जिस भाषा में ललकारा उसे देखकर स्वामी रामतीर्थ और संत कबीर की अक्खड़ वाणी याद आ जाती है - "बैठे हैं तेरे दर पे, तो कुछ करके उठेंगे।
या वस्ल ही हो जाएगा, या मरके उठेंगे।" (स्वामी राम)

"कबिरा खड़ा बाज़ार में, लिये लुकाठी हाथ।
जो घर फूंके आपना, सो चले हमारे साथ।" (कबीर)

यह अहंकार का घर जलाकर, मौत के दीवाने बनकर,

सर्वोदय का भूदान-ग्रामदान ग्राम स्वराज्य का मर्म समझाया था।

"करेंगे या मरेंगे" सब छोड़-छाड़ कर निकल कर चल पड़ी

भूदान-सर्वोदय आन्दोलन के दौरान श्री विमलाजी को इस समाज के विशाल फलक पर प्रेम तत्त्व को प्रायोगिक रूप में व्यापक करने का प्रथम अवसर मिला। भूदान-दर्शन के मूल में इसकी जड़ें उन्होंने देखी थी और इस से, उस में "आध्यात्मिक आयाम" केन्द्रस्थान में पाकर वह आकर्षित होकर, जुड़ी थीं और बाद में उससे मुक्त भी हुई थीं। भूदान आंदोलन में जुड़ने-मुक्त होने से सम्बन्धित उन के अपने ही शब्दों में यह देखें :-

"भूदान के पीछे मानवीय प्रकृति की नींव में निहित शुभ तत्त्वविषयक निश्चल श्रद्धा, मनुष्य समाज के गठन-विधान में आमूल परिवर्तन करने का पुरुषार्थ और मानव के मानस में जड़मूल की क्रान्ति निर्मिति करने की प्रक्रिया — इन सभी तत्त्वों ने मुझे भूदान की ओर आकर्षित किया..।" (विमलसंस्मरण, 82)

उनके प्रारम्भ का यह आशय उनके भूदान आंदोलन छोड़ने के समय अधिक स्पष्ट हुआ है और आंदोलन में जाते जाते भारतवर्ष का प्राण-परिचय-प्रत्यक्ष परिचय उनके आगे के कार्य में एक भिन्न प्रकार का श्रेयस्कर अनुभव बन पड़ा... 'प्रबुद्ध जीवन' पत्र के संपादक के [illegible], 30-6-1963 के पत्र के प्रत्युत्तर में विमलाजी ने यह स्पष्ट किया है—

"मैं 1953 में भूदान आन्दोलन से जुड़ी तब लोककल्याण की कोई एक प्रवृत्ति समझकर उस में प्रविष्ट नहीं हुई थी, परन्तु उस आंदोलन का जो एक आध्यात्मिक पहलु था उससे मैं मुग्ध बनी रही और उस कारण से मैं आकर्षित हुई थी। मनुष्य में निहित innate goodness विषयक — नींव के शुभ तत्त्व विषयक — श्रध्धा पर आधारित ऐसे इस क्रान्तिकारी आंदोलन ने मेरे मनुष्य जाति के प्रति प्रेम से भरे हुए [illegible] को आकर्षित किया था। उससे सम्बन्धित प्रवृत्ति के पीछे मेरे भीतर रही हुई कर्तृत्व-शक्ति को अभिव्यक्त करने की कोई खास वृत्ति नहीं थी, परन्तु मनुष्यजाति के लिये प्रेम को अभिव्यक्त करने का आशय था..।" (विमल संस्मरण, 85)

मनुष्यजाति के प्रति प्रेम का – करुणा का, आध्यात्मिक क्रान्ति का
(सिद्ध करना) उनका स्वप्न। भूदान आंदोलन से मुक्त होकर चेतना का
नया आयाम खोजने, अवधूत भूमि अर्बुदगिरि आबू की गोद में
एकान्त में विमलाजी 1963 से बैठीं।

यह आध्यात्मिक क्रान्ति सर्वप्रथम स्वयं से और स्वयं में
घटित होनी थी और फिर समाज में, बाह्य विश्व में। बरसों से
उनके अंतर में चल रहे इस क्रान्ति-चिन्तन क्रान्ति-दर्शन
को विश्वविख्यात चिंतक, अहंकार-मुक्त, आडंबरशून्य श्री. जे. कृष्णमूर्ति
के सम्पर्क से (1957-58) एक नई दिशा मिली। वास्तव में
विमलाजी के भीतर ही चल रहे चिन्तन-प्रवाह को श्री
(सम्बल) जे. कृष्णमूर्ति का सादृश्य संप्राप्त हुआ। एक ओर से अंतर
चिन्तन के क्षेत्र में यह घटना घटी, तो दूसरी ओर से
विमलाजी के शरीर-क्षेत्र के तल पर चल रही दीर्घकालीन
'कर्ण-पीड़ा' से मुक्त होने का श्री. कृष्णमूर्ति द्वारा सहाय-
-प्रयोग घटित हुआ, जो विमला जी ने स्वयं प्रस्तावित नहीं
किया था। करुणावश सहज भाव से स्वयं श्री. कृष्णमूर्ति ने
(प्रथम) रखे हुए इस प्रस्ताव की भी विमलाजी ने तो उपेक्षा की थी
जो कि विनोबाजी के अनुरोध के बाद ही विमलाजी ने स्वीकार
किया था। फलतः वे सदा के लिये इस घोर कर्ण-पीड़ा से
मुक्त हो पायी थीं।

यहाँ मज़े की बात तो यह थी कि भूदान-सर्वोदय आंदो-
-लन से भी बड़ी विकसित मानवचेतना की आध्यात्मिक
क्रान्ति के कार्य में विमलाजी को जुड़ना था, आबू में बैठकर,
उसके निमित्त दोनों बने – कृष्णमूर्ति और विनोबाजी!
अनन्त की यात्रा पर "ON AN ETERNAL VOYAGE" प्रस्थान करने
जहाँ कृष्णमूर्ति ने मानसिक एवं शारीरिक माध्यमों से योगदान
दिया, वहाँ विनोबाजी ने अपनी वत्सल करुणावश आर्थिक माध्यम

करुणाधारा

उनके आध्यात्मिक क्रान्ति के मय। अभियान की यह वेदना-धारा फिर भूदान आंदोलन की यात्राओं के समान भारतभर में सर्वत्र बहने लगी। प्रथम 'व्यक्ति' का और फिर 'समष्टि' का अंतस्-परिवर्तन करने, देह-कष्ट उठाकर भी माउन्ट आबु से दौड़ दौड़ कर दूर-सुदूर के कोने कोने में पहुँचने लगी। क्या गुजरात-सौराष्ट्र, क्या राजस्थान-मध्यप्रदेश, क्या पंजाब-उत्तरप्रदेश, क्या काश्मीर और पाकिस्तान-सरहद, क्या बिहार आसाम और क्या नेपाल - बांग्लादेश - श्रीलंका - जहाँ जहाँ आग लगती रही, यह करुणा-वेदना धारा उसे बुझाने पहुँचती रही - नोआखलीमें 'एकला चलो रे' गाते घूमते व्यथित गांधी की तरह! मानो गांधी की ही शांतिकामी आत्मा ने विमलादीदी को अपना 'माध्यम' न बना लिया हो!! दीदी को इस कदर जान जोखिम में डालकर आग बुझाने सब जगह दौड़ती हुई देखकर कई लोग दांतो तले उंगली दबा देते थे और बोल उठते थे कि

कुछ समय जं.पी. जैसों के साथ कोर्ट अकेले

काश्मीर

"अरे! गांधी मरा कहाँ है? वह तो इस शान्ति-क्रान्ति की करुणाधारा के रूप में फिर जी उठा है!"

गांधी के वारिस विनोबा भी दूर से यह सब देख-सुनकर दीदी पर अपने आशीर्वाद बरसाते रहते थे और उन्हें अपनी "आत्मजा" माननेवाले दादा (धर्माधिकारी) एवं ॐकारनाथजी आदि का तो समय समय पर क्या क्या कहना और उनके लिये करना! सब कुछ अकथ्य।

एक ओर से उनकी ऐसी शान्तियात्राएँ चलती रहीं, तो दूसरी ओर से शिविरों के द्वारा नवयुवाओं - छात्रों - बालकबालिकाओं - महिलाओं में अभिनव परिवर्तन लानेवाली क्रान्ति-उत्क्रान्ति यात्राएँ। ऐसे कई शिविरों का यह आलेखक साक्षी और सहयोगी भी रहा है और दीदी के उन शिष्यों में भी 'शिव-संचार' कर देनेवाले शिविरों की प्रेरक स्मृतियों से भी प्रेरणा-पाथेय पा लेता रहा है।

शिविरों द्वारा व्यक्ति व्यक्ति की क्रान्ति का उनका उपक्रम भारत की भाँति विदेशों में भी फैला, जहाँ उनकी भारतीय युनिवर्सिटी



से — भूदान कार्य छोड़कर बनारस से अपने सामान को आबु ले जाते समय विमलाजी को स्थानांतर हेतु ट्रक भाड़ा चुकाकर।

वत्सल महापुरुषों की ऐसी सर्वप्रकार की करुणा विमलाजी के नूतन आध्यात्मिक उत्थान-परिवर्तन के उपक्रम में एक विशिष्ट मायना, एक महत्व, एक संकेत रखती है।

अपने निजी आंतरदर्शन, आंतर परिवर्तन से अपनी अभिनव चेतना को सुविकसित और सुसज्जित करने का महाभियान चला विमलाजी का। उनकी आध्यात्मिक क्रांति का यह महाअभियान सत्य-प्रेम-करुणा-अहिंसा का नित्यनूतन रूप लेता चला। यह भारत और विश्वभर तक प्रसरित होने लगा। आबु में बैठकर भी विमला जी की विश्ववेदना रुकी नहीं रह सकी। भारत में और भारत बाहर, जहाँ जहाँ उन्होंने हिंसा, बर्बरता, द्वेष, अन्याय, अत्याचार, नफ़रत आदि देखे या दूर से सुने, उनकी अंतरस्थ विश्ववत्सल करुणाधारा से बहे बिना रह नहीं गया। विश्व की वेदना उनकी अपनी वेदना बनती चली।

व्यक्त होती है यह प्रश्नों पर प्रश्न बनती हुई जैसे — "आखिर क्यों ?" शीर्षक उनकी इस वेदना-कविता में :—

"क्यों ? आख़िर क्यों ? मेरा क्या अपराध है ?
ज़हर उगलने वाले उगलते हैं — स्पर्धा का, क्रोध का, द्वेष का;
और आँतें मेरी भुनी जाती हैं।
आग लगानेवाले लगा जाते हैं — नफ़रत की, हिंसा की, बर्बरता की,
और कलेजा मेरा झुलसता है।
जवान मरते हैं, मारे जाते हैं — वियतनाम, कश्मीर, हिन्दुस्तान में
और कोख मेरी सूनी पड़ती है।
आँसू बरसते हैं — बच्चों के, बूढ़ों के, अपाहिजों के;
और खून मेरी धमनियों में सूखता है। — क्यों ? आख़िर क्यों ?
भूलता है मानव सत्य, प्रेम, करुणा
और लज्जा से झुकता मेरा माथा है! (मौन के उस पार, 236")

उनके आध्यात्मिक क्रान्ति के अभियान की यह वेदना-धारा (करुणाधारा) फिर भूदान आंदोलन की यात्राओं के समान भारतभर में सर्वत्र बहने लगी। प्रथम 'व्यक्ति' का और फिर 'समष्टि' का अंतस्-परिवर्तन करने हेतु, महाकष्ट उठाकर भी माउन्ट आबू से दौड़ दौड़ कर (कभी दादा, ज.पी. जैसों के साथ कभी अकेली) दूर-सुदूर के कोने कोने में पहुँचने लगी।। क्या गुजरात-सौराष्ट्र, क्या राजस्थान-मध्यप्रदेश, क्या पंजाब-उत्तरप्रदेश, क्या काश्मीर और पाकिस्तान-सरहद, क्या बिहार आसाम और क्या नेपाल - बांग्लादेश - श्रीलंका - जहाँ जहाँ आग लगती रही, यह करुणा-वेदना धारा उसे बुझाने पहुँचती रही - नोआखलीमें 'एकला चलो रे' गाते घूमते व्यथित गांधी की तरह। मानो गांधी की ही शांतिकामी आत्मा ने विमलादीदी को अपना 'माध्यम' न बना लिया हो!! दीदी को इस कदर जान जोखिम में डालकर आग बुझाने सब जगह दौड़ती हुई देखकर दर्शक लोग दांतों तले उंगली दबा देते थे और बोल उठते थे कि

"अरे! गांधी मरा कहाँ है? वह तो इस शान्ति-क्रान्ति की करुणाधारा के रूप में फिर जी उठा है।"

गांधी के वारिस विनोबा भी दूर से यह सब देख-सुनकर दीदी पर अपने आशीर्वाद बरसाते रहते थे और उन्हें अपनी "आत्मजा" माननेवाले दादा धर्माधिकारी एवं ॐकारनाथजी आदि का तो समय समय पर क्या क्या कहना और उनके लिये करना! सब कुछ अकथ्य।

एक ओर से उनकी ऐसी शान्तियात्राएँ चलती रहीं, तो दूसरी ओर से शिविरों के द्वारा नवयुवाओं-छात्रों-बालकबालिकाओं-महिलाओं में अभिनव परिवर्तन लानेवाली क्रान्ति-उत्क्रान्ति यात्राएँ। ऐसे कई शिविरों का यह आलेखक साक्षी और सहयोगी भी रहा है और दीदी के उन शिबिरों में भी 'शिव-संचार' कर देनेवाले शिविरों की प्रत्येक स्मृतियों से भी प्रेरणा-पाथेय पा लेता रहा है।

शिविरों द्वारा व्यक्ति व्यक्ति की क्रान्ति का जनक उनका भारत की भाँति विदेशों में भी फैला, जहाँ उनकी भारतीय युनिवर्सिटी

विमलादीदी द्वारा स्वयं-प्रस्तुत यह भाव भारत-विदेश दोनों के लिये एक महत्त्व रखता है। जिस "अगम तत्त्व" = आत्म तत्त्व का अभाव वे विदेशों में पाती हैं, वहाँ उसे वे प्रतिष्ठित करती हैं। हर दिल में उसकी ज्योति जगाती हैं। हर दिशाहीन या पथभ्रान्त पथिक को वे अपने सही मार्ग पर लाकर रख देती हैं। विश्व के चालीस पचास देशों की शताधिक यात्राएँ अपने आप में उनके ऐसे विश्वात्मा रूप की महान उपलब्धि है।

बाबा-विनोबा लक्षित तो फिर विदेशों से स्वदेश में लौटकर, "हरि के काज बिना साधे उस सन्त को कब विश्राम रे ?" वाली कवि कुसायल की उक्ति को सार्थक करती हुई वे यहाँ की अनगिनत समस्याओं को सुलझाने फिर सारे भारत के दौरों पर निकल पड़ती हैं। मानों गांधी-विनोबा-जयप्रकाश-रविशंकर महाराज-दादा धर्माधिकारी-जे. कृष्णमूर्ति का ही विविध विरल प्रतिरूप !!

पंजाब-आसाम-गुजरात इत्यादि अनेक प्रदेशों की समस्याओं को सुलझाते हुए सारे भारत की मूलगत समस्याओं को, विमलसरिता अपने शीतल-निर्मल-विमल ऐसे शांतिजल के द्वारा, उनकी जड़ों में जाकर किस प्रकार सुलझाती है यह तो देखते ही बनता है। जलते हुए पंजाब में 1984 के दिनों में जलती धूप में जाकर उन्होंने कहा ~

✓ "इतिहास गवाही देता है कि हिन्दु धर्म को और भारतीय एकता को बचाने के लिये सिक्खों ने अनेक बलिदान दिये हैं। स्वातंत्र्य संग्राम में भी उनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। शहीद भगतसिंह जैसे बहुत-से युवानों ने भारत की आज़ादी के लिये अपने प्राण निछावर किये हैं। सचमुच तो ऐसे बहादुर, राष्ट्रभक्त सिक्खों के चित्त में खालिस्तान की बात उठी, वही हमारी हार है। xxx भारत देश आज नैतिक-सांस्कृतिक संकट में से गुज़र रहा है। पदभ्रष्ट, संस्कृतिभ्रष्ट और धर्मभ्रष्ट हुए, (हम) उसका मूलभूत कारण है (हमने) परमात्मा के स्थान पर पैसे, संपत्ति और सत्ता को दाखिल किये। xxx पंजाब में वैयक्तिक रूप से आपके पास विनोबाजी और जयप्रकाश जी की संतान के नाते से आई हूँ। पश्चिम के देशों में से जो आर्थिक ढांचा (हम) ले आये हैं उसके कारण हमारा पतन हुआ है। अभारतीय संस्कृति को हमने अपनाया है। भारतीय संस्कृति का गठन तो अनेक संप्रदायों से हुआ है। वह एक शानदार संस्कृति है।"

V. Imp (BOLD TYPE)

इसी बात को वे जब आगे कहती हैं तब ऐसा लगता है, मानों वे गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के अद्भुत "भारततीर्थ" काव्य "एइ भारतेर सागरतीरे, जागो रे प्राण धीरे" का ही स्मृतिभाष्य कर रही हों ~

"हमें आत्मबल को जाग्रत करना होगा। बालकों को सीखाना होगा कि यहाँ कितनी ही जमातें रहती आई हैं। कितनी ही संस्कृतियों का यह संगमस्थान है। हम सभी यहीं के निवासी हैं। हम सभी मनुष्य हैं। मनुष्य के नाते इस धरती पर एक दूसरे के साथ हिलमिल कर जीने का है। आज तो इन्सानीयत-मानवता ही भय में है। शिक्षा का कार्य मनुष्य को सही अर्थ में मनुष्य बनाना .. और चारित्र्यगठन करना है। बालकों में से सच्चे इन्सान-मानव पैदा करने है जो झुकेंगे नहीं-किसी को झुकायेंगे नहीं, जो डरेंगे नहीं-किसी को डरायेंगे नहीं, जो स्वयं खरीदे नहीं जायेंगे, न किसी को खरीदेंगे...।"

( -'विमल जीवनयात्रा' डो.प्रफुल्ल दवे : पृ. २०१-२०४ : अनूदित)

1984 की इस पंजाबयात्रा के अनगिनत प्रयत्नों के बाद विमलाजीने 1987 के पंजाब में राष्ट्रपति शासन लादे जाने के बाद भी परिस्थिति में जब सुधार नहीं हुआ तब अहमदाबाद से एक महत्त्वपूर्ण लेख लिखा और आबु से 25.1.88 के रोज भारत के राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री को खुला पत्र लिखा। बाद में राष्ट्रपति को उद्देशित एक तगड़ा, प्रेरक लेख भी लिखा, जिसमें 'समस्या का हल पंजाब की जनता के हाथ में' बतलाया।"

इस प्रकार निर्भयता से, बिना किसी क्षोभ-संकोच आग्रह-पूर्वग्रह के, भारत के एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में, अध्यात्म के अधिष्ठान पर रहकर उन्होंने अपना चिंतन भी प्रस्तुत किया और करुणावश लोगों के बीच जाकर उनकी समस्याएँ-सुखदुःख जानने और मिटाने का भरसक प्रयास भी किया। पंजाब समस्या को उन्होंने राष्ट्र के लिये एक पदार्थपाठ-बोधपाठ बतलाया।

फिर पंजाब की भाँति आसाम की समस्या में राष्ट्रीय संकट को देखती हुई वे वहाँ पहुँची उसके कारण और निवारण खोजने। समस्या की तह में वे गई। इस के पूर्व वे 1954 में आसाम गई थीं। फिर 1981 में, जब उन्होंने वहाँ दीर्घकाल रहकर, सभी समुदायों से मिलकर बैठकें आयोजित कीं, आंदोलनकारियों को पत्र लिखे, उनसे चर्चाएँ कीं, विदेशी नागरिकों की समस्या की जड़ों में गई। फिर 1984 में आबु से आसाम की आखिरी परिस्थिति के विषय में तलस्पर्शी पृथक्करण कर सभी सम्बन्धित जनों को, विनोबाजी को, प्रधानमंत्री को आंदोलनकारी नेताओं को लिखा। फलतः आसाम के लोग, उसके बहादुर युवा नेता और आसाम गण परिषद ने विजय पाया। इसे विमलाजीने 'लोकतंत्र का दूसरा प्रभात' कहकर 1985 के अंत में प्रतिष्ठा दी। इतना ही नहीं, आसाम की प्रजाशक्ति को धन्यवाद ज्ञापित करने 'गुजरात बिरादरी' द्वारा अहमदाबाद में विमलाजी की अध्यक्षता में एवं श्री उमाशंकर जोशी, यशवंत शुक्ल, श्री वासुदेव महेता, श्री अरविंद देसाई, श्री विष्णुपंड्या जैसे प्रबुद्धजनों की उपस्थिति में अनुमोदना-सभा भी हुई।

आसामी जनों हेतु

"हमें आत्मबल को जाग्रत करना होगा। बालकों को सीखाना होगा कि यहाँ कितनी ही जमातें रहती आई है। कितनी ही संस्कृतियों का यह संगमस्थान है। हम सभी यहीं के निवासी है। हम सभी मनुष्य है। मनुष्य के नाते इस धरती पर एक दूसरे के साथ हिलमिल कर जीने का है। आज तो इन्सानीयत-मानवता ही भय में है। शिक्षा का कार्य मनुष्य को सही अर्थ में मनुष्य बनाना और चारित्र्यगठन करना है। बालकों में से सच्चे इन्सान-मानव पैदा करने है जो झुकेंगे नहीं-किसी को झुकायेंगे नहीं, जो डरेंगे नहीं-किसी को डरायेंगे नहीं, जो स्वयं खरीदे नहीं जायेंगे, न किसी को खरीदेंगे...।"

('विमल जीवनयात्रा' डॉ.प्रफुल्ल दवे : पृ. 201-204 : अनूदित)

1984 की इस पंजाबयात्रा के अनगिनत प्रयत्नों के बाद विमलाजीने 1987 के पंजाब में राष्ट्रपति शासन लादे जाने के बाद भी परिस्थिति में जब सुधार नहीं हुआ तब अहमदाबाद से एक महत्वपूर्ण लेख लिखा और आबु से 25.1.88 के रोज भारत के राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री को खुला पत्र लिखा। बाद में राष्ट्रपति को उद्देशित एक तगडा, प्रेरक लेख भी लिखा, जिसमें 'समस्या का हल पंजाब की जनता के हाथ में' बतलाया।"

इस प्रकार निर्भयता से, बिना किसी क्षोभ-संकोच आग्रह-पूर्वग्रह के, भारत के एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में, अध्यात्म के अधिष्ठान पर रहकर उन्होंने अपना चिंतन भी प्रस्तुत किया और करुणावश लोगों के बीच जाकर उनकी समस्याएँ-सुखदुख जानने और मिटाने का भरसक प्रयास भी किया। पंजाब समस्या को उन्होंने राष्ट्र के लिये एक पदार्थपाठ-बोधपाठ बतलाया।

फिर पंजाब की भाँति आसाम की समस्या में राष्ट्रीय संकट को देखती हुई वे वहाँ पहुँची उसके कारण और निवारण खोजने। समस्या की तह में वे गई। इस के पूर्व वे 1954 में आसाम गई थी। फिर 1981 में, जब उन्होंने वहाँ दीर्घकाल रहकर, सभी समुदायों से मिलकर बैठके आयोजित की, आंदोलनकारियों को पत्र लिखे, उनसे चर्चाएँ की, विदेशी नागरिकों की समस्या की जड़ों में गई। फिर 1984 में आबु से आसाम की आखिरी परिस्थिति के विषय में तलस्पर्शी पृथक्करण कर सभी सम्बन्धित जनों को, विनोबाजी को, प्रधानमंत्री को आंदोलनकारी नेताओं को लिखा। फलत: आसाम के लोग, उसके बहादुर युवा नेता और आसाम गण परिषद ने विजय पाया। इसे विमलाजीने 'लोकतंत्र का दूसरा प्रभात' कहकर 1985 के अंत में प्रतिष्ठा दी। इतना ही नहीं, आसाम की प्रजाशक्ति को धन्यवाद ज्ञापित करने 'गुजरात बिरादरी' द्वारा अहमदाबाद में विमलाजी की अध्यक्षता में एवं श्री उमाशंकर जोशी, यशवंत शुक्ल, श्री वासुदेव महेता, श्री अरविंद देसाई, श्री विष्णुपंड्या जैसे प्रबुद्धजनों की उपस्थिति में अनुमोदना-सभा भी हुई।

आसामी जनों हेतु

पंजाब, आसाम की भाँति काश्मीर समस्या एवं गुजरात की कौमी अशांति की समस्या से भी विमलाजी की करुणाधारा कैसे अछूती रहती? वहाँ भी अनेक बार उनका शाता-प्लावन होता रहा।

1985 में अहमदाबाद की अनेक बस्तियों (पोलों) में वे पहुंची और जगह-जगह जाकर कौमी आग या मिलिटरी की गोलियों से भुने गये लोगों के रोते सिसकते स्वजनों के आँसू पोंछने लगीं~

"आज तो मैं फूलहार या तिलक लगवाने नहीं आई हूँ, परन्तु तुम्हारे दुःख में सहभागी बनने आई हूँ, तुम्हारे आँसू पोंछने आई हूँ।"

"गुजरात की जनता सौम्य संस्कारी जनता के रूप में प्रसिद्ध है। मैं मानती हूँ कि वह संस्कारिता, वह सज्जनता नष्ट नहीं हुई। पुलिस ने उन्मत्त बनकर अत्याचार किये। निर्दोष लोगों की जानें गईं। खंजरबाजी चली। हम टंटे फिसाद, खूनामरकी, बम फूटने-यह सब देख रहे हैं। यह कोढ़ एक दिन में खड़ा नहीं हुआ है। आज़ादी मिलने के बाद हम भूल गये कि यह तो ऋषियों की, संतों की भूमि है, धर्माचरण की तपा-भूमि है। दुनिया में सिर्फ़ दो ही वस्तुओं का स्मरण हमें रहा: पैसा और सत्ता। भगवान पर से हमारी नज़र हट गई। सत्ता के लिये इन अड़तीस बरसों में हमने कौन से पाप नहीं किये? चुनाव जीतने के लिये लोगों को डराया, डांटा, धमकाया; हम पाप के, अधर्म के रास्ते पर चढ़े। आसाम-बिहार-पंजाब में जो भ्रष्टाचार चला है, निर्दोष निरपराधी की छाती में गोलियाँ लगती हैं- यह एक दिन का ही परिणाम नहीं है। यह सारा सामुदायिक पाप में से उत्पन्न हुआ है।

"हमने तो 'सत्यमेव जयते' जगह जगह पर लिख दिया। पर जीवन में देखने जायँ तो सत्य खोजने पर भी मिलता नहीं है। ~~मंगलता~~ मांगल्य की शक्ति को हम भूल गये हैं!

"नागरिकों की एक समिति बने××× अपनी सुरक्षा हमें स्वयं ही करनी होगी.... इसके लिये शांतिसेना की स्थापना करनी चाहिये।

"इन तीन महीनों में यहाँ जो खून का खेल चला, वह देखकर दिल कहा नहीं मानता है। तुम्हारे दुःख दर्द में मैं शामिल हूँ। मैं शरमिंदा हूँ। जिसके दिलदिमाग में ज़नून पैदा हुआ, उन सबकी ओर से माफ़ी मांगती हूँ। मकान सुलगाये गये, बेकसूर लोगों को पकड़ा गया। यह बेदर्दी कैसे दूर हो सकती है? ×××

IMP

मानता

अभेद अंतर्जीवन

अनेक रूपों में अपना समग्र योगदान प्रदान करनेवाली विमलाजी का ऐसा लोकांतिक बहिर्जीवन उनके एकांतिक अंतर्जीवन से भिन्न नहीं था। जीवन को अखंडरूप में, अखिलाई में, समग्रता में जी रही इस सामान्य दीख रही असामान्य विभूति में बहिर्जीवन-अंतर्जीवन का भेद कहाँ?

नादोपासना

परन्तु फिर भी उनकी अंतरंग रुचि, साधना एवं सिद्धियों-उपलब्धियों को देखें तो उनकी यह अवस्था सर्वोत्कृष्ट प्रकार की रही है। उनकी इस साधना में नाद का, संगीत का और मूर्धन्य नादयोगी संगीतज्ञों का भी बड़ा स्थान रहा है।

विरासत में संगीत को प्राप्तकरनेवाली विमलाजी बाल्यावस्था से माधुर्यभरी भक्ति की मस्ती में गाती थीं। दादा धर्माधिकारी की सन्निधि में एकबार अनन्य तल्लीनता पूर्वक और बजाते हुए भजन गाकर मीरा जैसी भक्ति का वरदान पानेवाली विमलादीदी को नाद के-संगीत के क्षेत्र में पथप्रदर्शक भी मिले नादब्रह्मोपासक संगीतमार्तंड पंडित ॐकारनाथ जी ठाकुर जैसे। ॐकारनाथजी का संगीत प्रथम बार सुनने के बाद उनका उनके समीप बैठे संगीतश्रोताओं के साथ उनका संबंध-अनुबंध-संवाद-प्रतिभाव विमलाजी ने जानना चाहा था। यह जानकर और उनका अपूर्व नादोपासना-युक्त संगीत सुनकर एक ओर से जहाँ वे पंडितजी के नादलोक में लीन होती गईं, वहाँ दूसरी ओर से स्वयं पंडितजी भी उनकी, एक नादयोगिनी के रूप में अपार योग्यता एवं क्षमता देखकर उन्हें अपनी आत्मजा के रूप में अपनाये बिना नहीं रह सके। नादयोगसाधना की, प्रणव ॐकार नाद से अनाहत नाद के श्रवण की ओर यात्रा करने की इन दोनों नादोपासकों की कहानी फिर विमलाजी के जीवन के एक अन्य एवं प्रधान पहलू को दर्शाती है।

पंडित ॐकारनाथ जी के साथ के उनके अनेक प्रसंगों में से एक दो का उल्लेख एवं स्वयं विमलाजी का एकांत साधना में नाद-उपासना, नाद-श्रवण के प्रसंग प्रेरणाप्रद रहेंगे।

युवावस्था में दीदीने हिमालय में स्वामी रामतीर्थ की गुफा में जो मंत्र साधना की थी, उसमें दो में से एक प्रधान मंत्र जाप था प्रणवनाद ॐकार का। इस मंत्र-ॐकार नाद गान का एकांत में साधन करते हुए शरीर पर उसका क्या परिणाम आता है यह उन्हें अध्ययन करना था प्रत्यक्ष स्वयंप्रयोग के द्वारा। ॐकार का नाद जप कभी वैखरी-वाणी से प्रकट रूप में, तो कभी उपांशु रूप में चलता। इस सप्ताह तक मौन और यह

"ज़हर फैलाना आसान है। परंतु ज़हर निकलवा डालना मुश्किल है। इस्लाम में तो शांति, अमन, चैन का पयगाम है। हमारे भीतर पाखंड पैठ गया है। सच्चे इन्सान बनो। ××× पहले इन्सान बनने के बाद मज़हब की बातें करना शोभा देता है। इन्सानियत के बिना खुदा की बंदगी हो नहीं सकती। इस मुल्क में हमें रहना है, तो मुहब्बत से, इन्सानियत से रहें।" ("विमल संस्मरण पृ. 273-274-75)

इस प्रकार दीदी खुद आँसू पीते जायें, लोगों के आँसू पोंछते जायें, आश्वासन देते जायें, प्रभु का पयगाम सुनाते जायें और शांति समिति गठन करने का कहते चले जायें ...। इस विकट परिस्थिति का हाहाकार शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

Imp — भूदान आंदोलन प्रत्यक्ष रूप में छोड़कर आबु में जीवनयोग की परिवर्तनकारी साधना में लगने के बाद भी भूदान-सर्वोदय दर्शन का, गांधी-विनोबा दर्शन का जो मानवीय प्रेम का आध्यात्मिक हार्द था वह इन सारी भारतयात्राओं और विश्वयात्राओं में छूटा नहीं था, अपितु और व्यापक और विकसित हुआ था — नई दृष्टि, नई सूझबूझ, नये आंतरदर्शन और अभिगम के साथ। उनका आध्यात्म उन्हें लोकात्मा से विमुख नहीं, और अभिमुख कर रहा था। विनोबाजी का भूदान-उद्देश्य दिलों को जोड़ने का ही था।

उपर्युक्त थोड़े भारत-प्रदेशों की समस्याओं का कुल मिलाकर देखें तो उनके कितकितने प्रश्नों, प्रदेशों में, प्रसंगों, आंदोलनों आदि में अपनी क्रान्तदृष्टि के द्वारा दीदी का आध्यात्मिक प्रदान हुआ है। एक ओर से परिचय में आनेवाली अनेक व्यक्तियों और शिविरादि में उनके द्वारा नूतन मनुष्य का सृजन होता चला है, तो दूसरी ओर से व्यापक फलक पर अनेक समस्याओं का यथासम्भव समाधान। इन समस्याओं और कार्यकलापों की सूची तैयार करने जायें तो बड़ी लम्बी होगी। संक्षेप में —

(1) आपातकालीन परिस्थिति में जयप्रकाशजी आदि का सहयोग। (2) गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, काश्मीर, आसाम, केरल, आंध्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, गुजरात, किन किन प्रदेशों में, कितकितने कष्टों को उठाती हुई विमलाजी एक शांति मशाल लिये घूमी है — अध्यात्म के भारतीय सत्त्व के नूतन संशोधित आधार पर! कितकितने प्रदेश इस विराट देश के और कितकितनी समस्याएँ!! आपातकाल, गोवध-गोरक्षा आंदोलन, संपूर्ण क्रान्ति अभियान, कृषि-गोसेवा-ग्रामस्वराज संस्थापना, गुजरात और इन्सान बिरादरी की स्थापना, कौमी एवं अनामत आंदोलनों में शांति-स्थापना — शांतिसेना प्रवर्तना — ऐसे कितकितने रूपों में उनका समग्र योगदान होता चला है!!!

भी की थी, यह सर्वविदित है।

पंडित ॐकारनाथजी के नाद-योग-प्रयोग का दीदी के जीवन में विशेष स्थान रहा। इस घटना के बाद स्वस्थ हो जाने के पश्चात् दीदी अपने प्रवृत्ति-कार्यों के बीच से भी, अंत में शिवकुटी माउन्ट आबू आकर बसने के बाद भी पंडित ॐकारनाथजी से संगीतश्रवण करने और उनका वत्सल-स्नेह पाने दर्शनार्थ जाया करती थी। अनेक स्थानों के ऐसे अनेक प्रसंग भरे पड़े हैं। पंडितजी उन्हें श्रवण कराकर संतृप्ति पाते।

पंडितजी के जीवन-समापन समय का अद्भुत, अद्वितीय प्रसंग चिरस्मरणीय बन चुका है। स्वयं यह पंक्तिलेखक उस प्रसंग का, उसमें निहित पंडितजी की अपार वत्सलता का और इस पिता-पुत्री की दूरश्रवण-दूरदर्शन की क्षमता-सिद्धि का साक्षी है। अपनी "Voyage within with Vimalajee" लघु पुस्तिका में यह इस प्रकार व्यक्त हुआ है:-

अपने।

लेखक द्वारा

"महागायक ओमकारनाथ ठाकुर ने आत्मजा को अंतिम भजन सुनाया!"

"1967 के दिसम्बर माह के अंतिम दिनों की यह बात है।

"तब विसनगर महिला आर्ट्स कॉलेज के प्रिन्सिपल के रूप कार्य-काल के दौरान हमने अन्य साथी-सहयोग प्राप्त कर, उत्तर गुजरात में आयोजित होती रही छात्र-शिविर-श्रृंखला में प्रधानतः हमारी कॉलेज की छात्राओं को लक्ष्य में रखकर, विमलादीदी का विसनगर त्रिदिवसीय शिबिर आयोजित किया था। तब उनके अनुग्रह-संमति से उनका और उनके साथ पधारी हुई डॉ. प्रेमलता शर्मा (पं. ओमकारनाथजी की शिष्या एवं BHU की उच्च स्तरीय डिन ऑफ फेकल्टी ऑफ म्युजिक) का भी आतिथ्य करने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ। शिबिर की बैठकों के उपरान्त हमारे ही निवास में ही हम परिवारजनों, नन्ही बालिकाएं चि. पारुल-वन्दना-सविता एवं सहधर्मिणी सुमित्रा को उनका दुर्लभ सान्निध्यलाभ मिलता। रात को दीदी की सत्संग बैठक और प्रातःकाल मौन-ध्यान बैठकें जमी रहतीं। आनंद के, अंतर्नाद के, ज्वार उमड़ आते। दीदी की प्रचंड हँसी के फव्वारे फूटते।

"एक प्रातःकाल की घटना है।

"पिछली रात की सत्संग बैठक के अंत में डॉ. प्रेमलता शर्मा ने पं. ॐकारनाथजी के भजन भावविभोर बनकर गाकर सुनाये थे। पंडितजी ने विमलादीदी को अपनी आत्मजा मानकर उन्हें अपार वात्सल्य प्रदान

किया था यह बात भी उन्होंने की थी। उन दिनों पंडितजी बोरवे अस्पताल में बीमार थे। इस भूमिका के साथ सभी उस रात को निद्राधीन हुए थे — पंडितजी के 'जोगी मत जा!' भजन के भैरवी के स्वरों में रममाण होते हुए!!

"प्रातःकाल दीदी जल्दी तो जागते ही थे। परन्तु उस प्रातः तो बहुत ही जल्दी — मध्य रात्रि के बाद जल्दी उठकर वे पद्मासन लगाये ध्यान में बैठ गये। मैंने भी उन्हें देखकर, उनको बिना विक्षेप किये, विनम्रभाव से उनके समीप नीचे आसन जमाया और उनकी मौन-ध्यान की अंतर्यात्रा में सम्मिलित होने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। प्रायः एक घंटे के बाद जब दीदी लघुशंकार्थ जाने हेतु उठे तब उनके अधिक जल्दी उठ जाने का सहज ही मैंने कारण पूछा। पुनः ध्यान में बैठते हुए उन्होंने मुझे इतना ही उत्तर दिया कि, 'पंडितजी ॐकारनाथजी मुझे उनकी अंतिम नूतन संगीत-रचना सुनाने बुला रहे हैं' — और वे पुनः ध्यानस्थ बन गये — पंडितजी के साथ अपना दूरस्थ अंतस्-तार जोड़ते हुए। अपनी इस प्रिय आत्मजा को वे मुंबई से बीमारी के बिछौने से अंतिम वात्सल्यपूर्ण दिव्यसंगीत सुना रहे थे!! प्रायः साढ़े पांच बजे दीदी ने आंखें खोलकर, यह स्पष्टीकरण करते हुए कहा —

'पंडितजी की महायात्रा आरम्भ हो गई... उन्होंने अपने पार्थिव शरीर का त्याग कर दिया!!!'

"वे पुनः मौन में संचरण कर गये। प्रातःकाल छह बजे के ऑल इन्डिया रेडियो ने पंडितजी के देहत्याग के समाचार देकर साक्षी दी — दीदी के इस दूरस्थ दर्शन और श्रवण की — clair-voyance & Mental Telepathy की! 'मत जा' गानेवाला जोगी स्वयं ही अगम-यात्रा पर निकल चुका था!! ॐ शान्तिः

"दूसरे दिन शिबिर बैठक में दीदी ने पंडितजी को श्रध्धांजलि दी और प्रेमलताजी ने हूबहू ॐकारनाथजी के ही स्वरों में 'जोगी मत जा!' गाकर सभी की अश्रुधारा बहा दी।"

नाद-योगी ॐकारनाथ जी तो नादलोक में सिधार गये और उनकी यह नादयोगिनी आत्मजा जीवनभर उनके द्वारा प्रदत्त आहत-अनाहत नाद का अनुगुंजन करती रही — 'नादात्मक जगत्' को मूर्त रूप देती हुई और अपनी नाद साधना में 'आदिनादम् ॐकारम्' की अपनी यह विनयभरी सरल विमल वन्दना करती हुई। बड़ी ही हृदयस्पर्शी है, उपादेय है उनकी यह नाद-वंदन रचना:

किया था यह बात भी उन्होंने की थी। उन दिनों पंडितजी बोम्बे अस्पताल में बीमार थे। इस भूमिका के साथ सभी उस रात को निद्राधीन हुए थे— पंडितजी के 'जोगी मत जा!' भजन के भैरवी के स्वरों में रममाण होते हुए!!

"प्रात: काल दीदी जल्दी तो जागते ही थे। परन्तु उस प्रात: तो बहुत ही जल्दी— मध्य रात्रि के बाद जल्दी उठकर वे पद्मासन लगाये ध्यान में बैठ गये। मैंने भी उन्हें देखकर, उनको बिना विक्षेप किये, विनम्रभाव से उनके समीप नीचे आसन जमाया और उनकी मौन-ध्यान की अंतर्यात्रा में सम्मिलित होने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। प्राय: एक घंटे के बाद जब दीदी लघुशंकार्थ जाने हेतु उठे तब उनके अधिक जल्दी उठ जाने का सहज ही मैंने कारण पूछा। पुन: ध्यान में बैठते हुए उन्होंने मुझे इतना ही उत्तर दिया कि 'पंडितजी ॐकारनाथजी मुझे उनकी अंतिम नूतन संगीत-रचना सुनाने बुला रहे हैं'— और वे पुन: ध्यानस्थ बन गये— पंडितजी के साथ अपना दूरस्थ अंतस्-तार जोड़ते हुए। अपनी इस प्रिय आत्मजा को वे मुंबई से बीमारी के बिछौने से अंतिम वात्सल्यपूर्ण दिव्यसंगीत सुना रहे थे!! प्राय: साढ़े पांच बजे दीदी ने आंखें खोलकर यह स्पष्टीकरण करते हुए कहा—

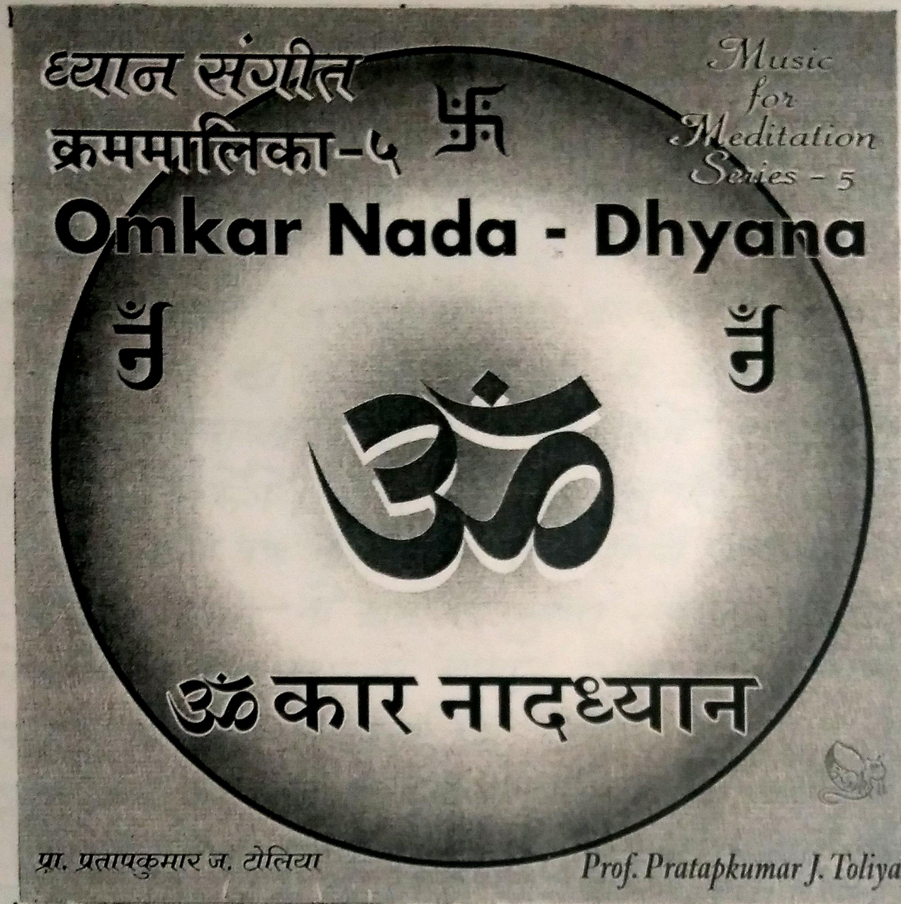
'पंडितजी की महायात्रा आरम्भ हो गई... उन्होंने अपने पार्थिव शरीर का त्याग कर दिया!!!'

"वे पुन: मौन में संचरण कर गये। प्रात:काल छह बजे के ऑल इन्डिया रेडियो ने पंडितजी के देहत्याग के समाचार देकर साक्षी दी— दीदी के इस दूरस्थ दर्शन और श्रवण की— clair--voyance & Mental Telepathy की! 'मत जा' गानेवाला जोगी स्वयं ही अगम-यात्रा पर निकल चुका था!! ॐ शांति।

"दूसरे दिन शिबिर बैठक में दीदी ने पंडितजी को श्रध्धांजलि दी और प्रेमलताजी ने हूबहू ॐकारनाथजी के ही स्वरों में 'जोगी मत जा!' गाकर सभी की अश्रुधारा बहा दी।"

नाद-योगी ॐकारनाथ जी तो नादलोक में सिधार गये और उनकी यह नादयोगिनी आत्मजा जीवनभर उनके द्वारा प्रदत्त आहत-अनाहत नाद का अनुगुंजन करती रही— 'नादात्मक जगत' को मूर्त रूप देती हुई और अपनी नाद साधना में 'आदिनादम् ॐकारम्' की अपनी यह विनम्रभरी सरल विमल वन्दना करती हुई। बड़ी ही हृदयस्पर्शी है, उपादेय है उनकी यह नाद-वंदन रचना:

हमारी स्वयं की उपर्युक्त 'ॐकार नादध्यान' की उपासना, अनेक साधक-मित्रों के अनुरोधों के कारण एक प्रयोग के रूप में स्वस्वरूप (Recorded form) भी ले रही थी। हमारी 'ध्यान संगीत' की कॉम्पेक्ट डिस्क/कैसेट शृंखला में ये हैं उसके जैकेट्स :-




• ॐ •

**OMKAR NADA - DHYANA**

INDICATIONS OF OMKAR NADA : NADA - BRAHMA & SHABDA - BRAHMA :

OMKARA NADA-BRAHMA EXPANDING IN SHABDA-BRAHMA AND SHABDA-BRAHMA MATRIKA, THE MOTHER OF ALL MANTRAS, LEADING TO SELF MEDITATION AND SALVATION ULTIMATELY :

" In the beginning of this AVSARPINI Age, Bhagawan Rishabh Deva had shown, explained and taught MATRIKA to Mahasati Brahmi. Perfect SHABDA-BRAHMA form MATRIKA consists of four speeches Para, Pashyanti, Madhyama, Vaikhari. Matrika is originated from the lotus-mouth of Bhagawan Adinath Rishabh Deva, it is established from time immemorial, it is the source of all scriptures. Matrika is beginningless and endless. It is the supreme post of principles and Supreme light of soul. All scriptures originate from the letters of Matrika, just as blooming buds from seed."

— SIDDHA MATRIKABHIDHARMA : "YOGASHASHTRA" : KALIKALA —
— SARVAJANA SRI HEMCHANDRACHARYA. P.P. 12.

**OMKAR - THE BOW :**

* "The sacred word ("OM") is called the bow, the arrow the soul, and Brahman its aim; he shall be pierced by him whose attention does not swere. Then he will be of the same nature with him (Brahman) as the arrow (becomes one with the aim when it has pierced it).

"On him are based the heavens, the earth, the atmosphere, the mind with all the organs. Him ye know as the one soul alone. Dismiss (all) other words; he is the bridge to immormality.

"Within (the heart), which the arteries enter as the spokes the nave of the wheel, he moves becoming manifold (=modifications of seeing, hearing, wishing, etc.). You meditate on him (on the soul) by the word "OM". Be welfare to you that you may cross over the sea of darkness."

— THE MUNDAKA - UPANISHAD " THE TWELVE PRINCIPAL UPANISHADS"
By Dr. E. Roer, Thesophical Publishing House, Adyar 4,5,6 PP. 157 - 58.

**Meditation Experiment Guide Line : Pl. be seated better in Padmasana or lie down in Shavasana-Yoganidra position and begin your internal journey with joy.**

***Concept, Script, Commentary, Singing :*** *Blessed by Great Masters, Prof. Pratapkumar J. Toliya*
**Co-rendering :** Smt. Sumitra P. Toliya, M.A. Sangeet Visharada, Kum. Nandini Rao, Award winner
**Bases of Ragas :** Durga, Pahadi, Bageshri, Shivaranjani, Malkauns, Jogiya, Bhairavi.
***Copyright Producers : Vardhaman Bharati International Foundation,***
*Prabhat Complex, K.G. Road, Bangalore - 560 009, INDIA Phone : 091-080-22251552, 26667882.*
U.S.A. : Mehtas : Ph. : 781-344-6030 (R) Canada : Falguni : Ph. : 604-576-4350 (R)


(क्रमशः)

इन सारे सन्दर्भों में, दीदी ने यहाँ ऊपर उल्लिखित ॐकार-मर्म हमें समझाया था और उसके उपर्युक्त काव्य का अपना हस्तलिखित कागज पत्र भी दिया था। उसके मूल में हमारा जो लिखित स्वपत्र एवं प्रश्नपृच्छा-पत्र दीदी के प्रति था वह उसका सम्बन्धित अंश, इस प्रकार था :—

बैंगलोर, पूर्णिमा-पूर्णातिथि, गुरु, 24-2-05

" परम पूज्या दीदी,

सविनय अभिवन्दना। 2-2-05 के कृपा-पत्र के लिये अनुग्रहीत हूँ। हम सब धन्य हुए। ×××××

पत्रान्त में आपने अपने 'दर्शन-प्रणाम' बंद करवाने के विषय में ठीक ही लिखा है। वह उचित ही है। मान-पूजादि से उद्-आसीन आपकी ऊर्ध्वात्मा के लिये यह सहज स्वाभाविक ही है। हम उसमें मनसा भी व्यवधान डालना अपराध समझेंगे। परन्तु 'दर्शन की अनुमति की गलती' कर 'तंग' करने की मेरी पिछले पत्र की बात का तात्पर्य आप से अधिक बोलने-बुलवाने-चर्चा करवाने के श्रम से मुक्त रखकर केवल 'मौन' संवाद में समीप आनेका था। और आप से 'संवाद', 'मौन' में ही नहीं होता क्या? मुखर संवाद (जिज्ञासा-प्रश्नचर्चा का संवाद) भी करना बहुत कुछ शेष है। कई प्रश्न आप से (समझ हेतु, वाद-विवाद हेतु नहीं) करने एकाध वर्ष से बाकी हैं — तात्त्विक ही। ये पीछे लिखे हैं। चाहें मिलने पर आप उत्तर-समाधान दें, या अनुकूलता हो तब पत्र से।

" वाद-विवादार्थ नहीं, समझ-जिज्ञासा-संवादार्थ — (यह विनम्र पृच्छा है, परीक्षा-प्रश्नावली नहीं) ⊗ पूज्या विमला दीदी से

ॐकार विषयक तात्त्विक पृच्छा

" ॐकार की आपकी अद्भुत, अप्रतिम, अनन्य साधना है। साधना ही नहीं, सायुज्य, सामीप्य, तादात्म्य है। ॐकार आपका अधिकार क्षेत्र है।

" जैसा कि इस अल्पात्मा ने किंचित् जाना है, 'ॐ' सत्-चित्-आनंद है, स्वयं का एवं सृष्टि का अंतिम 'अस्तित्व' है, सहजात्म का ही स्वरूप है, जैन दर्शनानुसार २४ तीर्थंकरों का प्रतीक स्वरूप है, तीर्थंकरों की दिव्य देशनावाणी का प्राकट्य, अभिव्यक्तिकरण-सी 'दिव्यध्वनि' है ('दिव्यध्वनिर् भवति ते विशदार्थ सर्व' — श्री. भक्तामर स्तोत्र)। वैखरी-मध्यमा-पश्यन्ति के पार का 'परा' वाणी का रूप है, इत्यादि। (वेदान्त दृष्टि से उत्पत्ति-स्थिति-लय ब्रह्मा-विष्णु-महेश हैं।)

"परन्तु —

"आपकी, आप स्वयं की प्रतीतिधारा-अनुभूतिधारा में ॐकार का रहस्य क्या है? तात्पर्य क्या है? अर्थ और महत्त्व क्या है? आप अपनी इस

अनुभूति-प्रतीति की अभिव्यक्ति क्या (थोड़ी-सी कृपा कर) हमारे हेतु करेंगी? (आपने 14-8-1999 को आबू में अपनी एक संस्कृत काव्यरचना कुछ 'ॐकारं आदि-नादं' जैसी सुनाई थी, वह आप हमें स्वरस्थ करने की अनुमति सह भेजेंगी?)

" या तो आपकी यह अनुभूति कबीर के 'गूंगे के गुड़' जैसी एवं उपनिषद् के 'नेति नेति' की भाँति अथवा श्रीमद्जी के 'कही शक्या नहीं ते पण श्री भगवान जो।' (-अपूर्व अवसर) के अनुसार अनिर्वचनीय, अभिव्यक्ति-अक्षम है?

(हमारी 'ॐकार नाद ध्यान' शीर्षक पूर्व-प्रेषित सी.डी. के संदर्भ में-)

"① ॐकार आदि नाद या अनादि नाद? ('आदिनाद ॐकार' निकस्यो एकमु)

② ॐकार को समाविष्ट करनेवाली यह सृष्टि (जगत) अनादि-अनंत या सादि-सांत?

③ सृष्टि के तत्त्व, समष्टि तत्त्व, प्रकृति, पंच महाभूत अनादिअनंत या सादिसान्त?

④ कर्म अनादि-अनंत या अनादि-सांत? कर्मबन्ध प्रथम कब और क्यों प्रारम्भ?

⑤ आत्मा तो अनादि-अनंत ही न? 'सर्वभिन्न' न? ('भिन्ना-प्रत्ययेनात्मा' - तत्त्वार्थ सूत्र)

⑥ आत्मा का - शुद्ध चैतन्य मय आत्मा का - स्वरूप ही ॐकारमय? शून्य/पूर्णमय?

⑦ वास्तविक प्रणवनाद - ॐकारनाद मौन से, अंतर्मौन से ही उठता है? उस से ही उसके अनुनाद उठते हैं न? (आपकी 'मौन के अनुनाद', हमारी 'अनंत की अनुगूंज' कृतियों के सन्दर्भ में।)

⑧ ॐकार 'आहत नाद' का स्वरूप या अनाहत नाद का?

⑨ प्रणवनाद-प्रणवगान आहत नाद से अनाहत नाद में संचरण हो सकता है न? (हमारे विनम्र 'ध्यान-संगीत' के प्रयोग के संदर्भ में है यह। नाद, शब्द या ध्वनि/रव।)

ध्यान ⑩ ॐकार-ध्यान अंतिम सहजावस्था, स्वयं की अवस्था, आत्मस्थिति में ले जा सकता है?

⑪ विशुद्ध सहजावस्थामय आत्म-ध्यान ही केवलज्ञान एवं [illegible] पार जाने का स्थान है। इस में ॐकार का विनियोग-उपयोग कहाँ, कैसे? ॥ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

" यह सारी तात्त्विक पृच्छा केवल स्वानुभव जानने हेतु शास्त्रों, ग्रंथों की नहीं, प्राप्तात्मा-दर्शनात्मा-ज्ञानात्मा ऐसे आप की स्वयं की अनुभूति की, आत्मदशा की प्रतीति की दृष्टि समझने, उससे

अनुभूति-प्रतीति की अभिव्यक्ति क्या (थोड़ी-सी कृपा कर) हमारे हेतु करेंगी? (आपने 14-8-1999 को आबू में अपनी एक संस्कृत काव्यरचना कुछ 'ॐकारं आदि-नाद' जैसी सुनाई थी, वह आप हमें स्वरस्थ करने की अनुमति सह भेजेंगी?)

" या तो आपकी यह अनुभूति कबीर के 'गूंगे के गुड़' जैसी एवं उपनिषद् के 'नेति नेति' की भाँति अथवा श्रीमद्‌जी के 'कही शक्या नहीं ते पण श्री भगवान जो।' (-अपूर्व अवसर) के अनुसार अनिर्वचनीय, अभिव्यक्ति-अक्षम है?

(हमारी 'ॐकार नाद ध्यान' शीर्षक पूर्व-प्रेषित सी.डी. के संदर्भ में-)

"① ॐकार आदि नाद या अनादि नाद? ('आदिनाद ॐकारं' निकस्था (?))

② ॐकार को समाविष्ट करनेवाली यह सृष्टि (जगत) अनादि-अनंत या सादि-सांत?

③ सृष्टि के तत्त्व, समष्टि तत्त्व, प्रकृति, पंच महाभूत अनादि अनंत या सादि सान्त?

④ कर्म अनादि-अनंत या अनादि-सांत? कर्मबन्ध प्रथम कब और क्यों प्रारम्भ?

⑤ आत्मा तो अनादि-अनंत ही न? 'सर्वभिन्न' न? ('त्रिभिन्ना-प्रत्ययात्मना' – तत्त्वार्थ सूत्र)

⑥ आत्मा का – शुद्ध चैतन्य मय आत्मा का – स्वरूप ही ॐकारमय? शून्य/पूर्णमय?

⑦ वास्तविक प्रणवनाद – ॐकारनाद मौन से, अंतर्मौन से ही उठता है? उससे ही उसके अनुनाद उठते हैं न? (आपकी 'मौन के अनुनाद', हमारी 'अनंत की अनुगूंज' कृतियों के सन्दर्भ में।)

⑧ ॐकार 'आहत नाद' का स्वरूप या अनाहत नाद का?

⑨ प्रणवनाद-प्रणवगान आहत नाद से अनाहत नाद में संचरण हो सकता है न? (हमारे विनम्र 'ध्यान-संगीत' के प्रयोग के संदर्भ में है यह। नाद, शब्द या ध्वनि/रव।)

ध्यान ⑩ ॐकार-ध्यान अंतिम सहजावस्था, स्वयं की अवस्था, आत्मस्थिति में ले जा सकता है?

⑪ विशुध्ध सहजावस्थामय आत्म-ध्यान ही केवलज्ञान (एवं [illegible]) पार जाने का स्थान है। इस में ॐकार का विनियोग-उपयोग कहाँ, कैसे? ॥ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

" यह सारी तात्त्विक पृच्छा केवल स्वानुभव जानने हेतु शास्त्रों, ग्रंथों की नहीं, प्राप्तात्मा-दर्शनात्मा-ज्ञानात्मा ऐसे आप की स्वयं की अनुभूति की, आत्मदशा की प्रतीति की दृष्टि समझने, उससे

भी इस विषय में विचार विमर्श करने का, पूछने का, अनुरोध भी किया था।

परन्तु प्रणवनाद ॐकार सह दीदी के अनुसंधान का रहस्य-भेद हमने उनके देहत्याग के महाप्रस्थान के बाद अपनी ध्यान-चिंतना में और उनके इस काव्य में स्पष्टरूप से पाया। 'पूर्णत्व' शीर्षक उनकी इस अभिव्यक्ति में उनका प्रतिपादन कि "ब्रह्मांड सिमटा प्रणव में, प्रणव सिमटा बिंदु में, उस बिंदु के निज गर्भ में.... हम जा बसे हैं...... अर्ध मात्रा प्रणव की, पावन गुफा है विमल की...." बड़ा ही सूचक, सांकेतिक, सुस्पष्ट है। "ॐकारम् बिन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।" के ॐकार वन्दना के श्लोक का यह दीदी का प्रतिपादन मानो साकार रूप दे देता है। दीदी के लिये वह अब 'ध्यान' का विषय नहीं रहा था, उसमें संस्थिति, 'तिरोधान' परमपद पूर्णत्व प्राप्ति का स्थान मानो बन गया था। उनके इस प्राप्तव्य का, अनुभूति की अभिव्यक्ति का, उनका यह सारा ही अनुभव-गान बड़ा ही दृष्टव्य, चिंतव्य, उपदिष्टतव्य है:—

पूर्णत्व

"हम जा बसे हैं अगम में
जहाँ दिन नहि ना रात है,
सूरज नहि ना चाँद है,
नित तेज के उस लोक में .... हम जा बसे हैं।

"पृथ्वी समाई आप में
जलधि समाया अगन में,
अग्नि समाया पवन में,
और पवन सोया गगन में .... हम जा बसे हैं।

"ब्रह्मांड सिमटा प्रणव में
प्रणव सिमटा बिंदु में
उस बिंदु के निज गर्भ में .... हम जा बसे हैं

"अर्ध मात्रा प्रणव की
पावन गुफा है विमल की
वह गुफा है विमल की
उस गुफा के शून्य में
निष्कल अगम निष्पंद है
शून्यत्व ही पूर्णत्व है
शून्य के उस पूर्ण में .... हम जा बसे हैं...।" ("मौन-निनाद")

(check) तारकः? —'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकः।' और 'कोटि सूर्य जहाँ नाचे लाथ' वाली उक्तियों की स्मृति दिलानेवाली ग्रहतारकातीत आत्मलोक की, ॐकार की अंतर्गुफा के अगम-पास में विराजित अवधूत

भी इस विषय में विचार विमर्श करने का, पूछने का, अनुरोध भी किया था।

परन्तु प्रणवनाद ॐकार सह दीदी के अनुसंधान का रहस्य-भेद हमने उनके देहत्याग के महाप्रस्थान के बाद अपनी ध्यान-चिंतना में और उनके इस काव्य में स्पष्टरूप से पाया। 'पूर्णत्व' शीर्षक उनकी इस अभिव्यक्ति में उनका प्रतिपादन कि "ब्रह्मांड सिमटा प्रणव में, प्रणव सिमटा बिंदु में, उस बिंदु के निज गर्भ में.... हम जा बसे हैं...... अर्ध मात्रा प्रणव की, पावन गुफा है विमल की...." बड़ा ही सूचक, सांकेतिक, सुस्पष्ट है। "ॐकारम् बिन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।" के ॐकार वन्दना के श्लोक का यह दीदी का प्रतिपादन मानो साकार रूप दे देता है। दीदी के लिये वह अब 'ध्यान' का विषय नहीं रहा था, उसमें संस्थिति, 'तिरोधान' परमपद पूर्णत्व प्राप्ति का स्थान मानो बन गया था। उनके इस प्राप्तव्य का, अनुभूति की अभिव्यक्ति का उनका यह सारा ही अनुभव-गान बड़ा ही द्रष्टव्य, चिंतव्य, उपदिष्टतव्य है:—

पूर्णत्व

"हम जा बसे हैं अगम में
जहाँ दिन नहि ना रात है,
सूरज नहि ना चाँद है,
नित तेज के उस लोक में ....हम जा बसे हैं।

"पृथ्वी समाई आप में
जलधि समाया अगन में,
अग्नि समाया पवन में,
और पवन सोया गगन में ....हम जा बसे हैं।

"ब्रह्मांड सिमटा प्रणव में
प्रणव सिमटा बिंदु में
उस बिंदु के निज गर्भ में.... हम जा बसे हैं

"अर्ध मात्रा प्रणव की
पावन गुफा है विमल की
वह गुफा है विमल की
उस गुफा के शून्य में
निष्कल अगम निष्पंद है
शून्यत्व ही पूर्णत्व है
शून्य के उस पूर्ण में ....हम जा बसे हैं...।" ("मौन-निनाद")

(check) तारका? —'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकः।' और 'कोटि सूर्य जहाँ नावे लव' वाली उक्तियों की स्मृति दिलानेवाली अक्षरातीत आत्मलोक की, ॐकार की अंतर्गुफा के अगम-पास में विराजित अवधूत

दूसरी ओर से हमें अपना आत्म-साक्षात्कार का, देह होते हुए विदेहदशा प्राप्त करने का, गाये हुए रिकार्ड-संगीत को जीवन में उतारकर अनुभव करने का लक्ष्य सुदृढ़ कराती हुई हमें यह कहकर ऊपर उठाती रहीं :-

"आप अब 'कलाकार' मिट कर 'जीवनसाधक' बनें और अंतर्संगीत द्वारा सर्वोच्च 'देहभिन्न विदेहदशा' को प्राप्त करें ।"

आत्मा है, नित्य है, देह से भिन्न है

सभी परमगुरुओं, संतों, तत्त्वदर्शनों एवं साधनाओं के सार-निष्कर्ष रूप उनका यह आशीर्वाद संदेश था। उसमें श्रीमद्जी-दर्शित 'देहभिन्न केवल चैतन्य' के अनुभव-ज्ञान को पाने का ही संकेत, दिशा-निर्देश था। विमलसरिता सह अंत बहाव की यात्रा का यह महत्त्वपूर्ण प्रतिफलन, प्रतिरूप, प्रतिध्वनि निहित था। अनेक परमगुरुओं का प्रतिरूप सदा सर्वदा निष्कल-निश्छल-निर्मल-विमल ऐसी "विमलसरिता" का, सारे जीवन को परिप्लावित, परिशुद्ध, परितृप्त, कृतकृत्य, गंतव्य-सन्मुख करा देने का यह कितना बड़ा प्रदान है, कितना विरल, विमल अनुग्रह है? उनके माध्यम से मानो परम कृपालुदेव का ही परमानुग्रह!

"प्रत्यक्ष सद्गुरु-प्राप्ति का माने परम उपकार, तीनों योग एकत्व से वर्ते आज्ञाधार!"

— · —

खंड-2
8




विदेहयात्रा

(विमलदीदी के स्वैच्छिक समाधियुक्त देहत्याग के पश्चात)

B/2

विमलाताई वर्तमान में जीवनभर स्थित रहकर, पल पल में पूर्ण आनन्द-रस छलकाती हुई जी गईं। उनके अंतरघट से छलकते हुए इस जीवनरस में निकट सम्पर्क में आनेवाले सभी को सराबोर डुबोती-नहलाती हुई, जीने की और मरने की भी एक कला सीखलाती गईं। अपनी जीवनसंध्या में तो कृत-कृत्य होकर इस का उन्होंने पूर्ण अनुभव किया। उनकी ही इस कविता में, उनके घट से छलकते हुए इस आनन्द-रस की अनुभूति की कितनी सुंदर, मर्मपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है!

बो

"जीवन की इस मधुसंध्या में, घट से जीवनरस छलके।
चित्त में संचित जीवनसौरभ, सुरभित काया को कर दे।
दो नयनों की मधुशाला में, पलकों की प्याली छलके.....

परा

मौन निलय में 'परा' मात के, मुग्ध नाद बिन्दु छलके,
'पश्यन्ति' में ही अभिसिंचित, मुखरित 'मध्यम' में गूंजे.....!

स्फुर 'वैखरी' में अमृतधारा, रसमय संजीवक प्रकटे,
दशेन्द्रियों से छलके हरिरस, संध्या हरिमय दीप्ति धरे....!

जीवन की इस मधुसंध्या में, घट से जीवनरस छलके,
विमल विलास रसेश्वर हरि का, जन्म मृत्यु महारास बने...!"

अंतर्मौन-निष्पन्न "परा-पश्यन्ति-मध्यमा वैखरी" के ऊर्ध्वमुख वाणी-रूपों द्वारा (मौन के अनुनाद) 'रसो वै सः।' उस परम रसमय रसेश्वर प्रभु का विमलादीदीने तो जन्म-मृत्यु दोनों का 'महारास' रचा दिया, उस 'परम महारस' को चख लिया, जो उनके मरुदेश के जीवन-वास अर्बुदाचल की अवधूतों की धरा पर अभी अभी के अवधूत आनन्दघनजी ने चाखा और गाया था —

"अवधू! नाम हमारा राखै,
सोइ परम महारस चाखै...!"

विमलाजी ने इस परम 'महारस' को चखा भी और उसका जन्म-मृत्यु दोनों का 'महारास' रचाया भी। तभी तो अवधूत अर्बुद-धरा पर उनके देह के-स्थूल देह के-उत्सर्ग समय पर मानों आनंदघनजी की ही यह जीवनरस-धारा अमृतवर्षा करती हुई पर-प्रदेश से आकर गूंजती रही—

'अब हम अमर भये न मरेंगे...

"या कारण मिथ्यात्व दियो तज, क्यूं कर देह धरेंगे ?... अब हम०
देह विनाशी हम अविनाशी, अपनी गति पकरेंगे।
नाशी जासी हम थिरवासी, चोखे ह्वै निखरेंगे.... अब हम०
मर्यो अनंत बार बिन समज्यो, अब सुख-दुःख विसरेंगे,
आनन्दघन निपट निकट अक्षर दो, जो नहीं सिमरे सो मरेंगे।
अब हम अमर भये न मरेंगे"।
('आनंदघन पद्य रत्नावलि')

तो जिस विमलात्मा ने अपने निपट निकटस्थ 'मौन निलय' में 'परा' वाणी के दो अक्षर साधकर छलका दिये, बिखरा दिये, बाँट दिये, उनकी कहाँ मृत्यु ? कहाँ जन्म ? वे तो (पहुँच गई) इन दोनों और अन्य सभी द्वन्द्वों से पार परम चरम अमरता में, अनंतता में !

जीवन में, इस जन्म में, देह में रहते हुए भी वे आनंदघनजी और श्रीमद् राजचन्द्रजी वत् 'देहातीत दशा' में रही, जैसा कि उन्होंने स्वयं अपना अनुभव लिखा—

"देह में रहते हुए, विश्वभर में व्याप्त होने की प्रतीति,
कितनी अद्भुत है।
'मम' भाव से सर्वथा अस्पृष्ट
'अहमस्मि' प्रत्यय कैसा विलक्षण है।" ('मौन के अनुनाद')

"आज अन्तरंग में अमृत-धारा हिलोरें ले रही है
उसके कल्लोल से तीनों भुवन भीग गये हैं
आज उस अनुभूति के निर्झर में,
परा वाचाएँ नहा आई हैं।
शब्दों के परिधान उतार कर
उन्होंने मौन-वसन पहन लिये हैं।
आज दिक्-काल के उस पार
अपार्थिव आनन्द का समारोह है।
शब्द-बन्ध तोड़ कर चित्त
चैतन्य की बाहों में समाधिस्थ है।" ('अशब्द की ओर')

शब्दातीत, देहातीत, मनसातीत अद्भुत आनन्दमय आत्मानुभूति— जीवनानुभूति युक्त देहवास—जीवनवास स्नेह-सख्य-सौहार्द सह जीने के (जगकर जीने के) बाद विमलात्मा को जब देह के भी परिधान को उतारने का समय निकट दीखाई दिया, तब तैयारी की 'अनिवार्य' करने की—

"या कारण मिथ्यात्व दियो तज, क्युं कर देह धरेंगे ?... अब हम॰
देह विनाशी हम अविनाशी, अपनी गति पकरेंगे।
नाशी जाशी हम थिरवासी, चोखे व्है निखरेंगे ....अब हम॰
मर्यो अनंत बार बिन समज्यो, अब सुख-दुःख विसरेंगे,
आनन्दघन निपट निकट अक्षर दो, जो नहीं सिमरे सो मरेंगे।
अब हम अमर भये न मरेंगे"

('आनंदघन पद्य रत्नावलि')

तो जिस विमलात्मा ने अपने निपट निकटस्थ 'मौन निलय' में 'परा' वाणी के दो अक्षर साधकर छलका दिये, बिखरा दिये, बाँट दिये, उनकी कहाँ मृत्यु ? कहाँ जन्म ? वे तो पहुँच गई इन दोनों और अन्य सभी द्वन्द्वों से पार परम-चरम अमरता में, अनंतता में !

जीवन में, इस जन्म में, देह में रहते हुए भी वे आनंदघनजी और श्रीमद् राजचन्द्रजी वत् 'देहातीत दशा' में रही, जैसा कि उन्होंने स्वयं अपना अनुभव लिखा —

"देह में रहते हुए, विश्वभर में व्याप्त होने की प्रतीति,
कितनी अद्भुत है।
'मम' भाव से सर्वथा अस्पृष्ट
'अहमस्मि' प्रत्यय कैसा विलक्षण है।" ('मौन के अनुनाद')

"आज अन्तरंग में अमृत-धारा हिलोरें ले रही है
उसके कल्लोल से तीनों भुवन भीग गये हैं
आज उस अनुभूति के निर्झर में,
परा वाचाएँ नहा आई हैं।
शब्दों के परिधान उतार कर
उन्होंने मौन-वसन पहन लिये हैं।
आज दिक्-काल के उस पार
अपार्थिव आनन्द का समारोह है।
शब्द-बन्ध तोड़ कर चित्त
चैतन्य की बाहों में समाधिस्थ है।" ('अशब्द की ओर')

शब्दातीत, देहातीत, मनसातीत अद्भुत आनन्दमय आत्मानुभूति — जीवनानुभूति युक्त देहवास — जीवनवास स्नेह-सख्य-सौहार्द सह जीने के (जगकर जीने के) बाद विमलात्मा को जब देह के भी परिधान को उतारने का समय निकट दीखाई दिया, तब तैयारी की अनिवार्य करने की —

B/5

इस नन्ही भोली गुड़िया के और बड़ी सयानी बुढ़िया के भी इन प्रश्नों का किसी के पास उत्तर नहीं था — शायद सात वर्ष के बाल रायचन्द जैसी उसकी दशा थी, जिसने मृत्यु को सर्वप्रथम देखा था अमीचन्द जैसे प्यारभरे बुजुर्ग के देह छोड़ने पर।

परन्तु आत्मानुभव संपन्न विश्वात्मा विमलादीदी की व्यापक विराट आत्मा अपने नूतन (अभिनव अध्यात्मवासा) अगम-देश का और अगम-रूप का पता (सूक्ष्म पता) दे रही है — आनन्दघन, राजचन्द्र और कबीर जैसे आत्मानुभूत आत्माओं की-सी भाषा में ~

सूक्ष्म पता

"हम जा बसे हैं अगम में,
जहाँ दिन नहीं, ना रात है।
सूरज नहीं ना चाँद है,
नित तेज के उस लोक में ..... हम जा बसे हैं!
पृथ्वी समायी आप में,
जलधि समाया अगन में,
अग्नि समाया पवन में
और पवन सोया गगन में .... हम जा बसे हैं!
ब्रह्मांड सिमटा प्रणव में,
प्रणव सिमटा बिंदु में,
उस बिन्दु के निज गर्भ में .... हम जा बसे हैं!
अर्ध मात्रा प्रणव की,
पावन गुफा है विमल की
वह गुफा है विमल की
उस गुफा के शून्य में
निष्कल अगम निष्पंद है
शून्यत्व ही पूर्णत्व है
शून्य के उस पूर्ण में .... हम जा बसे हैं!" (मौनानिनाद)

अपने इस अगमदेश की गगन-गुफा-अंतर्गुफा का पता जिस बुधजन को या अबुधजन (उर्फ अबोध) बालिका आदि को लगे - न लगे, हमें तो सुदूर दक्षिण में सहायक दीदी के देहविलय के मिलते ही, क्या क्या गुजरी हम पर, अल्पांश भी अभि-व्यक्त करना सम्भव नहीं शब्दों में उस विरहानुभूति को —

सजीवनमूर्ति

"सजीवनमूर्ति बिन सब जग है सूना ...
व्यथा का झरना पिघल पिघल कर हो गया है दूना
बढ़ता दिन दूना रात चौगुना ...।"

B/5

इस नन्ही भोली गुड़िया के और बड़ी सयानी बुढ़िया के भी इन प्रश्नों का किसी के पास उत्तर नहीं था — शायद सात वर्ष के बाल रायचन्द जैसी उसकी दशा थी, जिसने मृत्यु को सर्वप्रथम देखा था — अमीचन्द जैसे प्यारभरे बुजुर्ग के देह छोड़ने पर।

परन्तु आत्मानुभव संपन्न विश्वात्मा विमलादीदी की व्यापक सूक्ष्म पता — विराट आत्मा अपने नूतन (अभिनव अध्यात्म-वासा) अगम-देश का और अगम-रूप का पता दे रही है — आनन्दघन, राजचन्द्र और कबीर जैसे आत्मानुभूत आत्माओं की-सी भाषा में ~

सूक्ष्म पता

"हम जा बसे हैं अगम में,
जहाँ दिन नहीं, ना रात है।
सूरज नहीं ना चाँद है,
नित तेज के उस लोक में ..... हम जा बसे हैं!
पृथ्वी समायी आप में,
जलधि समाया अगन में,
अग्नि समाया पवन में
और पवन सोया गगन में .... हम जा बसे हैं!
ब्रह्मांड सिमटा प्रणव में,
प्रणव सिमटा बिंदु में,
उस बिन्दु के निज गर्भ में .... हम जा बसे हैं!
अर्ध मात्रा प्रणव की,
पावन गुफा है विमल की
वह गुफा है विमल की
उस गुफा के शून्य में
निष्कल अगम निष्पंद है
शून्यत्व ही पूर्णत्व है
शून्य के उस पूर्ण में .... हम जा बसे हैं!" (मौननिनाद)

अपने इस अगमदेश की गगन-गुफा-अंतर्गुफा का पता जिस बुधजन को या अबुध जन (अकेले अबोध), बालिका आदि को लगे - न लगे, हमें तो सुदूर दक्षिण में समाधि दीदी के देहविलय के मिलते ही, क्या क्या गुजरी हम पर, अल्पांश भी अभि-व्यक्त करना सम्भव नहीं शब्दों में उस विरहानुभूति को —

सजीवनमूर्ति

"सजीवनमूर्ति बिन सब जग है सूना ...
व्यथा का झरना पिघल पिघल कर हो गया है दूना
बढ़ता दिन दूना रात चौगुना ...।"

७



और पहुंचा जब सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर, उन्हीं सीढ़ियों से जब हर बार आनन्दभरा जाता था और ऊष्मा से भरा लौटता था— आता

"बाहर पत्ते झर रहे थे, भीतर कषाय के पत्ते,
बाहर हवा बह रही थी, भीतर दीदी की मस्ती-सुगंध
बाहर जल-नाद उठ रहे थे, भीतर अनहद के नाद!
शिवकुटी के शिव-महल में : इस आतम के रंग-महल में—
"बाहर से आसन सूना है (तोमर आसन शुद्ध आदि)
पर शून्य-महल में दीप जला है / बढ़ा-गुफा है।
बाहर अब नाद-गान चुप है, खामोश है
भीतर के अनहद ढोल बजते हैं।
कैसी ताई! यह लीला रचाई!"*

एक ओर से साथ बह आया था विरह-व्यथा का सरका, तो दूसरी ओर से अचानक उस रात की आई आंधी-वर्षा ने इसका अनुभव करा दिया—

"वर्षा भर की विकलतामाने
झोली भर की विख्यातमान
तपन बुझा की विप्पातमान
दर्शन करा दिया विमलतामाने

और फिर कह दिया अगमदेश जा बसी इस विश्वमाता दीदी से हमने :—
सदाबहार अंतर्गुफा वाली
"दीदी!
आप भले ही इस विश्वधरा से विलीन हो गई हों!
शिवकुटी की अर्बुद-गुफा से अंतर्धान हो गई हों!
अपने अगमदेश की गगनगुफा में छिप गई हों!
भारत देश की बाहरी गुफा से भाग गई हों!
पर कहाँ भाग सकोगी हमारी अंतर्गुफा से? हृदयगुफा से?
ज़रा भाग कर भी तो देखें!"
और हमारी यह अंतर्गुफा भी कहाँ कहाँ सजी थी-समृद्ध हुई थी!
कभी श्रीमद् जी की इडर भूमि पर आप ही के संग,
तो अनेकश: इस अर्बुद भूमि पर भी आप ही के संग आतमरंग
तो कभी रत्नकूट हम्पी की भूमि पर परम अवधूत सहजानंदघनजी संग
और उनकी जगमाता "आपकी-सी प्रतिमूर्ति माँ धनदेवीजी संग
तो कभी माँ चिन्नम्मा, बाबा, चाचा, और अलिप्त-ज्ञाता पंडितजी संग...!
ऐसे अनेक परमपुरुषों से समृद्ध सदाबहार, हमारी अंतर्गुफा से आप भाग कर भी तो देखें! उसमें एक नहीं, अनेक परमप्रेरीजनों का जो वास है!

B/8 (सद्गु शाता-प्रधान)

और, हमारी इस अंतर्गुफा में तो विश्वात्मा का विमल-निर्झर
बहता ही रहेगा, सदा-सर्वदा, जीवनभर।
परन्तु देखता हूँ, ताकता हूँ फिर 'शिवकुटी' की ओर—
तो दीखता है—
"बह गया है
बह गया है वह शांत-प्रशांत विमल-निर्मल निर्झर —
जीवनभर जो बहता रहा था —
आद्यान्त, अनवरुद्ध, अविराम...
कलकल निनाद करता हुआ, किलकिलाता हुआ,
हँसता-हँसाता, खिलता-खिलाता हुआ
विमलानन्द में झूमता झूमाता हुआ;
अब 'अनंत' की ओर बह गया है
(को) 'सांत' हस्ती मिट गया है,
शांति-पारावार में घुलमिल गया है,
परम प्रशांति में विलीन हो गया है,
विराट विश्व में विश्वरूप-विश्वात्मा बन सर्वव्यापी बन गया है।"

"और अब खामोश हो गई है, निःस्तब्ध निःशब्द हो गई है—
अतीत (के) अवधूतों की यह अवधूत-भूमि, स्यात् आर्हतों की आत्माराधन भूमि,
आनंदघन की यह विहार भूमि, अनंतात्माओं की योगसाधन भूमि।
विमलात्मा ने थी यहाँ अलख जगाई,
जाग उठी थी स्पंदित (निश्चिक) अखिलाई।
कंदराएँ गिरिवर की, उपत्यकाएँ गह्वर की,
शांत सरित सर जल, कलकल निर्झर की -
बिखरी यहाँ सकल सचराचर सृष्टि निसर्ग की
मनुज के ऊर्ध्वमुख-ऊर्ध्वगमन हेतु परम संसर्ग की।
...अब सब खामोश हो गई है, निःस्तब्ध निःशब्द हो गई है—
अतीत-अवधूतों की यह अवधूत भूमि..."

जब और साधक-जनों के भाव-जगत में, भीतरी और बाहरी जगत में, ऐसी बड़ी घटना घट गई है—युग की एक युगद्रष्टा विश्वद्रष्टा महाहस्ती के इस जहाँ से उठ जाने की, तब हमारे राजनेता? हमारे प्रचार-माध्यम?
तो आकाशवाणी-दूरदर्शन को तनिक-से समाचार तक देने की पड़ी नहीं—
जब कि 'ऐरे गैरे नत्थू खैरे' के ढेर से समाचार धड़ल्ले से ये देते रहते हैं!

(सहज शाता-प्रज्ञान)

अरे, हमारी इस अंतर्गुफा में तो चिद्आत्मा का विमल-निर्झर
बहता ही रहेगा, सदा-सर्वदा, जीवनभर!
परन्तु देखता हूँ ताकता हूँ फिर 'शिवकुटी' की ओर—
तो दीखता है—
"बह गया है
बह गया है वह शांत-प्रशांत विमल-निर्मल निर्झर —
जीवनभर जो बहता रहा था—
आद्यान्त, अनवरुद्ध, अविराम...
कलकल निनाद करता हुआ, किलकिलाता हुआ,
हँसता-हँसाता, खिलता-खिलाता हुआ
विमलानन्द में झूमता झुमाता हुआ;
अब 'अनंत' की ओर बह गया है
(की) 'सांत' हस्ती मिट गया है,
शांति-पारावार में घुलमिल गया है,
परम प्रशांति में विलीन हो गया है,
विराट विश्व में विश्वरूप-विश्वात्मा बन सर्वव्यापक बन गया है।"

"और अब खामोश हो गई है, निःस्तब्ध निःशब्द हो गई है—
अतीत (के) अवधूतों की यह अवधूत-भूमि, स्यात् आर्हतों की आत्माराधन भूमि,
आनंदघन की यह विहार भूमि, अनंतात्माओं की योगसाधन भूमि!
विमलात्मा ने थी यहाँ अलख जगाई,
जाग उठी थी स्पंदित (निश्चल) अखिलाई!
कंदराएँ गिरिवर की, उपत्यकाएँ गह्वर की,
शांत सरित सर जल, कलकल निर्झर की -
बिखरी यहाँ सकल सचराचर सृष्टि निसर्ग की
मनुज के ऊर्ध्वमुख-ऊर्ध्वगमन हेतु परम संसर्ग की!
...अब सब खामोश हो गई है, निःस्तब्ध निःशब्द हो गई है—
अतीत-अवधूतों की यह अवधूत भूमि..."

जब और साधक-जनों के भाव-जगत में, भीतरी और बाहरी जगत में, ऐसी
बड़ी घटना घट गई है—युग की एक युगद्रष्टा विश्वहृदय महाहस्ती के इस
जहाँ से उठ जाने की, तब हमारे राजनेता? हमारे प्रचार-माध्यम?
तो आकाशवाणी-दूरदर्शन को तनिक-से समाचार तक देने की पड़ी नहीं—
जब कि 'ऐरे गैरे नत्थू खैरे' के ढेर से समाचार धड़ल्ले से ये देते रहते हैं!

माउंट आबु

आनंदघन की धरा पर

सूखे पतझड़-भरे पेड़ों पर
खिले केसरिया पुष्प पलाश
वैसे खिल उठे/रहे मम शुष्क हृदय में
रसभर अनुभव-सुमन चौपासे....!
— सुरखे।

अर्बुदाचल की अगम धरा पर,
'आनंदघन' की अनुपम सरा/कंदरा पर,
आनंद अंतर का लगा लहराने,
अभिनव नितनूतन अनुभव वास
युगयुगों की मिटाता प्यास
— सुरखे 2

एक प्रकाश मेड़ता से उठा
अर्बुद-धरा पर आजीवन महका,
कालांतर में ववाणिया (जाकर) जाकर
राय 'राजचन्द्र' में किया निवास, —
सुरखे 3

नहीं अतीत, नहीं कोई अनागत।
"इस पल" का (यहाँ") सदा-सुस्वागत ॥
(वर्तमान)

आनंदघन की अर्बुद-धरा पर,
अपधूतों की अद्भुत धरा पर, आहतों की अतीत धरा पर...
✓ काल ठहर गया वर्तमान में आकर, विमलात्मा के विमलदृष्टि में पल भर।
"अभी-अभी ही था नहीं कभी भी, वर्तमान की वह अपूर्व क्षण
आया है वह अपूर्व अवसर,...
"~~अवसर~~ आया ~~हाथ~~ अनमोल, साध लें शीघ्र, कर के मोल।'
झट-पट कर लें आत्मसिद्धि हम
ना करें टालम-टोल।" अवसर आया एक अणमोल।
('सहजानंद सुधा')

आनंदघन की अर्बुद-धरा पर,
अपधूतों की अद्भुत धरा पर,
काल ठहर गया वर्तमान में आकर
विमलात्मा-विमलदृष्टि में पल भर। साध लें उनसे हम शीघ्र जल भर।
विमल-दीप से निज दीप जला/प्रकट कर।

११

B 11

अभी तो यह थोड़ी सी काव्यांजलि – शब्दांजलि यहाँ रुकती है, परन्तु अभी शेष है दिवंगता विश्वात्मा विमलादीदी से और अभी के अनप्रेषित पत्र का प्रत्युत्तर पाना !

अभी अभी लिखे दीदी के नाम के इस पत्र को भेजने से पूर्व तो अचानक उनके महाप्रयाण कर देने के समाचार पाये और उनसे सदा की भाँति प्रत्युत्तर पाना शेष रह गया! यह पत्र अब भेजें भी कहाँ उनके उस अगम देश में ? परंतु अपनी अंतर्गुफा में विराजित दीदी को यह पत्र अवश्य दे सकेंगे। यह उन्हें सौंपकर प्रतीक्षा करेंगे उनके अनमोल-प्रत्युत्तर पत्र की। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की भाषा में कहकर और यह लघु-कवित्त यहाँ प्रस्तुत कर रुकेंगे कि–

"आमार चिट्ठी आशबे कबे ?"
(कब आयेगी हमारी चिट्ठी ?) } एक अनप्रेषित पत्र

"लिखी चिट्ठी दीदी के नाम
थोड़े में कह दीं बातें तमाम,
शेष कुछ जोड़ने किया विलम्ब तो
(दीदीने) प्रस्थान कर दिया अपने धाम !
लिखी चिट्ठी दीदी के नाम।

दौड़ा, पहुँचा दीदी के (शिवकुटी) धाम,
शून्य सब पाया सूम-साम,
पर शून्य में भी एहसास 'पूर्ण' का,
कराती रहीं वे अगम-अनाम
लिखी चिट्ठी दीदी के नाम !

सदा वे लिखतीं उत्तर अविराम,
कभी आशीष, कभी 'विमल-प्रणाम',
अब आयेगा कब उत्तर अपना ?
आश लगाये बैठे हैं आतमराम – अपने राम।
लिखी चिट्ठी दीदी के नाम।"

पता नहीं, यह होगा कब–
परन्तु 'शिवकुटी' की उस शनिवार 21 मार्च की संध्या में फूट पड़ा सितार पर गाए गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की अंतिम यात्रा-प्रार्थना का 'शम्मुखे शाँति पारावार' तब ! दीदी के स्मृति-संधान में, अंजलि-अध्यान में, निःशब्द के सन्शब्द परिधान में यह गुंजता रहा —" शम्मुखे शाँति पारावार.... भाशाओ तरणी हे कर्णधार!"
"लहरा रहा है शांति-पारावार सन्मुख/बहा ले चलो उसमें जीवन-नैया, हे कर्णधार

अभी तो यह थोड़ी सी काव्यांजलि - शब्दांजलि यहाँ रुकती है, परन्तु अभी शेष है दिवंगता विश्वात्मा विमलादीदी से प्यारे अभी के अनप्रेषित पत्र का प्रत्युत्तर पाना!

अभी अभी लिखे दीदी के नाम के इस पत्र को भेजने से पूर्व तो अचानक उनके महाप्रयाण कर देने के समाचार पाये और उनसे सदा की भाँति प्रत्युत्तर पाना शेष रह गया! यह पत्र अब भेजें भी कहाँ उनके उस अगम देश में? परंतु अपनी अंतर्गुहा में विराजित दीदी को यह पत्र अवश्य दे सकेंगे। यह उन्हें सौंपकर प्रतीक्षा करेंगे उनके अनमोल-प्रत्युत्तर पत्र की। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की भाषा में कहकर और यह लघु-कवित्त यहाँ प्रस्तुत कर रुकेंगे कि-

"आमार चिट्ठी आशबे कबे?"
(कब आयेगी हमारी चिट्ठी?) } एक अनप्रेषित पत्र

"लिखी चिट्ठी दीदी के नाम
थोड़े में कह दीं बातें तमाम,
शेष कुछ जोड़ने किया विलम्ब तो
(दीदी ने) प्रस्थान कर दिया अपने धाम!
लिखी चिट्ठी दीदी के नाम।

दौड़, पहुँचा दीदी के (शिवकुटी) धाम,
शून्य सब पाया सुम-साम,
पर शून्य में भी एहसास 'पूर्ण' का,
कराती रहीं वे अगम-अनाम
लिखी चिट्ठी दीदी के नाम!

सदा वे लिखतीं उत्तर अविराम,
कभी आशीष, कभी 'विमल-प्रणाम',
अब आयेगा कब उत्तर अपना?
आस लगाये बैठे हैं आतमराम-अपने राम!
लिखी चिट्ठी दीदी के नाम!"

पता नहीं, यह होगा कब—
परन्तु 'शिवकुटी' की उस शनिवार 21 मार्च की संध्या में फूट पड़ा सितार पर गाए गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की अंतिम यात्रा-प्रार्थना का 'शमुखे शांति पारावार' तब! दीदी के स्मृति-संधान में, अंजलि-श्रद्धान् में, निःशब्द के सशब्द परिधान में यह गुंजता रहा— "शमुखे शांति पारावार... भासाओ तरणी हे कर्णधार!"
"लहरा रहा है शांति-पारावार सन्मुख/बहा ले चलो उसमें जीवन-नैया, हे कर्णधार

"हे मुक्तिदाता ! तुम्हारी दया और तुम्हारी क्षमा तो बनेगी चिरपाथेय
मेरी इस चिरयात्रा का ! जिससे मृत्यु के, जन्म-मरण के, बंधन
क्षय हो जाकर, तुम्हारे विराट बाहु में समाकर, मेरा बन जाना होगा
विश्वरूप विश्वात्मा !"

और इस प्रार्थना-गान के साथ ही संधान हो रहा था सन्मुख के दीदी के शून्य आसन पर चित्रित पंच महाभूतों से पार के भस्मीभूत देह के विराट विश्वरूप में विलीन हो जाने का, उनका 'विश्वात्मा' बन जाने का !

रविवार 22 मार्च की श्रद्धांजलि सभा में, कि जिस की पूर्व संध्या हेतु घंटों परिश्रम कर लिखा था 'पत्रिका' ने मांगा हुआ दीदी विषयक लघु-लेख "आध्यात्मिक क्रान्ति की अग्रदूत विश्वात्मा विमलाजी", परंतु न तो उस पत्रवालों ने वह छापा (फुरसत कहाँ, मूल्य कहाँ उन अखबारवालों को ऐसी विराट हस्ती के उठ जाने का अपनी राजनीतियों की उधेड़बुनों और दौड़धूपों में ?), न उस सभा के संचालक महोदय बंधु ने श्री इस अल्पात्मा को निम्न अल्प से वक्तव्य को प्रस्तुत करने का अवसर दिया! (जब कि कुछ बातूनी वक्ता जनों के अनर्गल अनावश्यक आलाप-विस्तार को, एक 'स्वामीजी' की चली 'दीर्घकथा' को बीच में विनय से भी, स्नेहयुक्ति से भी रोकने संक्षेप करवाने का उन्हें साहस नहीं था !) :—

"इस अर्बुदगिरि अरावली के पूरब में मीरा की मेड़ता-भूमि से आत्ममस्ती की खुमारी भरी मीरावत् ही एक प्रकाश उठा था मस्त महायोगी आनन्दघन का, जब कि —

"आशा औरन की क्या कीजे, ज्ञानसुधारस पीजे !
भटके द्वार द्वार लोगन के कूकर आशाधारी,
आतम-अनुभव रस के रसिया, उतरे न कबहु खुमारी ... ॥"

और यह कहकर-गाकर मुनि आनन्दघन ने त्याग दिया था सेठ के आधिपत्य वाला वह उपाश्रय सदा के लिये ! सेठ के ऐसे "पालतू संत" बनने के बजाय इस अवधूत ने अपना लिया था इस अवधूतभूमि अर्बुद-गिरि का गुफावास !! प्रेमदिवानी मीरा ने मेड़ता का सुखमय महल छोड़ा था विष का प्याला पीकर और आनंदघन ने सुविधाभरा उपाश्रय !!! मीरा ने तो विषपान एक बार किया था, परंतु अनेकों के महाअहंकारों का विषपान

शिवबुध के
वटवृक्ष के बाह्यांतरे

B/14

विमलाडीडी की विदा पर

वटवृक्ष की (हे) छाया विलाई, पत्ती कलियाँ सारी मुरझाई;
विहगों की पँखें सिकुड़ाई, जिस की सब से थी स्नेह-सगाई।
वटवृक्ष की...

पितृ-मात ने, संत-तात ने जिसकी, अमृतजल से की थी सिंचाई;
बाला ने अंतर-दृष्टि जगाकर, विमल से 'विमलानंद' बनपाई।
कृष्णजी ने अनंतयात्रा से जुड़ाकर, प्रकट करा दी जिसमें अखिलाई,
राजचन्द्र का 'अप्रमाद' अपनाकर, अंतर्मौन की सृष्टि रचाकर
पल पल 'अप्रमत्त दशा' प्रगटाई ... ऐसे वटवृक्ष की...

दादा ने - ओमकारनाथ ने 'आत्मजा' बनाई, चाचा गुरुदयाल थे जिनके भाई
स्वजन थे जिनके मकरंद-से सांई, बच्चों की थी जो दादी-माँ माई'
ऐसे वटवृक्ष की...

जिसने स्नेह की सृष्टि सजाई, जो घट घट में रही समाई
जिसने अगम की महिमा 'गाई' मौन-अनुनाद-अनुगुंज सुनाई;
झीनी-झीनी-सी स्वर-धुन सुनाकर, 'जिसने 'मनलड' की धुनि रमाई
सूने पतझड़ में, चेतन-जड़ में - जग बिरज में, कैसी 'अनाहत' धुम मचाई!
ऐसे वटवृक्ष की...

ढाई अक्षर में प्रेम-पोथी पढ़वाकर, 'आत्मा' का अनुबंध बँधाकर,
जीवन से (उसका) नाता जुड़वाकर, ॐकार बिन्दु का लक्ष्य बनाकर
वीतराग महावीर का दिल में ध्यान लगवाकर, कषाय-मुक्ति-युक्ति बतलाई,
'मन के मौन' की शक्ति दिखलाकर, मौन-भवन की भूमि दरशाई...।
ऐसे वटवृक्ष की...

नारी-चोले में अलख-जोगी थर कैसा, भलभलों की कनपट्टी पकड़वाई
कबीरवत अक्खड़, गोरखवत गंभीर अवधूत आनंदघन की खुमारी भर लाई,
जीवत जागत कबहुँ न उतरे तारी, ऐसी, अगम-पियाला भंग पिलाई,
होली के दिन 'होली' खेली, अहंपद की होली जलाई;
सब में निहित, सुप्त सुवर्ण की ज्योत जगाई, घटघट विराजित आत्मसिद्धि प्रगटाई (गुरुपद-हुमान)
मर्त्य में अमर्त्य, अमर आतमपद की, बार बार महा-महिमा है गाई।
ऐसे वटवृक्ष की...

"नहीं जनम-दिन जशन मनाना, नहीं मौत का मातम मनाना;
स्मारक-तस्वीर ना मेरी बनवाना-पूजना, अंतर्लोक मौन ध्यान करवाना,
दिह-विदेह की दशा बतलाकर हमें, ता, जनम-मरण के पार ले जाना, अमर मर्यें न मरेंगे गाना
बाहर-भीतर - जड़-चेतन के नूतन अध्यात्म की कुंजी बतलाई
(विज्ञान मालमा?)
ऐसे वटवृक्ष की...

(※) आज

वटवृक्ष को 'सूना सूना' देखकर प्रभा-दीदी-से प्रतिछायी पंछी रोये,
तो उसे 'भरा-पूरा' निहारकर वीणा-शिल्पा-अंजलि-तेजिंदर से ~~हर्ष~~ सजगता में ~~सोये~~ खोये
कोई कहीं न चादर तान के सोये, मौन-गान में सुर भिगोये;
(है) कैसी सब में लगन और लौ लगाई! वटवृक्ष की छाया बिलाई,
सभी से जिसकी थी प्रेम सगाई...!

शिवमहल में शिवकुटी में 'तोमार आसन शून्न (शून्य, खाली) आजि'....!
बाहर से आसन है सूना (भीतर रंगमहल भरपूरा, नहीं सूना)
पर शून्य महल में दीप जला है, अंतर्दीप जला है;
बाहर के सब नाद-गान खामोश चुप भले हों,
भीतर का अनहद ढोल बजत चला है!
कैसी माई! यह 'लीला' रचाई...!
वटवृक्ष की छाया कहाँ बिलाई?

(शिवकुटी माउन्ट आबु आगमन पर)
19.3.09 — 'निशान्त' अनंतयात्री

(Repeated poems)

॥ ॐ ॥

8/16

शिवकुटी, माउन्ट आबू
20.3.2009

शिवकुटी खामोशी छाई....

अणु अणु स्पन्दित हुआ था फिर भी,
कली कली सारी मुरझाई,
भीतर सब पर उदासी छाई
बाहर से भले हँसते भाई !
सरफरोशी किसको है भायी?
विदा हुई है सब की ताई
अलविदा कर गई, चकमा दे गई
सब की प्यारी ताई माई...!

शिवकुटी खामोश छाई

(यह) बिरह-व्यथा नहीं गाई जाई
" अकथ कथा नहीं सुनाई जाई
सितार भी मेरी शरमाई
'नाद-अनुनाद' ना, गूँज-अनुगूँज ना,
मौन प्रतिध्वनि ना देती सुनाई...! शिवकुटी खामोश छाई।

बरस पैंतालीस धूनि रमाई,
आगम निगम की अलख जगाई
खामोश बंधुओ! खुशियाँ मनाओ,
दीदी ने अब मुक्ति है पाई...!

शिवकुटी खामोश छाई।

[illegible]

वर्षा कर दी विश्वात्मा ने, झोली भर दी [illegible]
[illegible] दी [illegible], दर्शन-शिक्षा दी [illegible]।

दीदी का अलविदा

दीदी आप भले विश्व-पृथ्वी-धरा से भाग गईं
शिवकुटी [illegible] को त्याग गईं॥
पर मेरी अंतर्गुफा से भाग कर कहाँ जाओगी
[illegible] बिठा रखा है सब परमाणुओं के [illegible]।

— 'निशान्त' · अंतर्यामी
(बैंगलोर 080-26607882)

ई० अहमदाबाद 3:30 A.M. [illegible])

॥ ॐ नमः ॥ B 17

# संतजन स्वजन विमल परिवार

परमगुरु प्रभु राजचन्द्र तो परोक्ष लोक से करते रहे संचार ।
उनके प्रतीक सजीवन प्रतिमूर्ति-से इन (सब) संतों का प्रत्यक्ष परम उपकार
हमारा संतजन-स्वजन परिवार
जिससे हरा-भरा (बना) संसार !

पितृवत् पूर्णानंद भुवनरत्न सहजानंद प्राज्ञ पंडित श्री सुखलालजी,
बाबा विनोबा, बालकोबा और मस्तीभरे बापा मल्लिक गुरुदयालजी,
संतबाल और संतशिष्य नानचंदजी, नाद संगीत गुरु बापूराव नादानंदजी
कितकितनों ने इस पथ्थरवत् प्रताप का भर दिया पारावार !
(कर दिया मालामाल) बनाया हराभरा संसार
हमारा संतजन-स्वजन परिवार !

जन्मदात्री माँ अध्यात्मभाववत् मुक्ति-दात्री दो वत्सल माता
रेपल्ली में चिन्मयी चिन्नम्मा, हम्पी में धनदेवी 'जगत्माता'
पद पद पर की कितनी रखवाली, जीवनभर दिलायी सुख-शाता।
पंथ बिहड़ में, घोर संघर्ष में, 'आत्मसिद्धि' संधान में कराती रही (जो) पार
कित कितना गिनें उपकार
हमारा संतजन-स्वजन संसार !

संसार के इस विजन-वन में, स्वजन-जन ये थे शरणप्रदाता
इन सब के प्रतिनिधि बनकर, दीदी विमल रही मार्ग-विधाता
कभी मात-तातवत्, कभी अग्रजानुज भ्रातवत्, कभी बिटिया दिवंगता,
सभी का स्नेह सभी का प्यार-दुलार, लुटाती रही, आत्मसिद्धि की और ज्योति भरमार
दिखलाय के देहातीत दशा दरबार !
धन्य विश्वात्मा का विमल-परिवार !

— [illegible] अनंतयात्री

# विमलादीदी की सर्वोदय से समग्रता और सप्तभाषी तक की अनंत के साम्बल से जीवनयात्रा ~~~~~.....

अध्यात्म की अभिनव आयाम-प्रज्ञाता, समग्रता-अखिलाई (wholeness) की अलख आराधिका, जीवनयोग की महासाधिका जीवनद्रष्टा विदुषी दीदी विमलाताई ठकार अंत में प्रायः ८८ वर्ष का जीवनवन पार करके विराट के द्वार पर पहुँच गई हैं - ११वी मार्च पूर्णिमा के प्रातः की अमृतवेला में, चैतन्य जयंती के दिन।

अनेक जन्मों की पूर्वसाधना लिये पधारी हुई, अपार पुरुषार्थ संपन्न की हुई, अनेक संतों- द्रष्टाओं- महामानवों के स्नेह-सान्निध्य को संप्राप्त, अनेक ग्रंथों का अवगाहन करते हुए भी स्वानुभव के जीवनग्रंथ का अनुसरण करनेवाली विमलादीदी आखिर महाविदेह के 'सुहावने निस्पृह देश' - अगम देश के अगम मार्ग पर संचरण कर गई है - इस जीवन का एक आनंद सभर, अधुनातम नूतन दर्शन कराकर, अनेकों के जीवन उज्ज्वल बनाकर, देह में बसते हुए भी विदेहीदशा धारण कर जीते हुए!

उनके साथ इस पंक्तिलेखक का, अन्य अनेक उपकारक सत्पुरुषों की पावन सन्निधि के उपरान्त, ५४ वर्ष का सुदीर्घ सम्बन्ध। भूदान आंदोलन १९५४ से लेकर आज २००९ तक का यह लम्बा परिचय नाता। इस नाते ने जीवन में बहुत बड़ी सर्जनमय भूमिका निभायी है - 'तद्दूरे तद्वन्तिके' वत् निकट से और दूर से। Voyage within with Vimalyee पुस्तिका में उसका अल्पांश आलेखित हुआ है। इस उपक्रम में दीदी के भूदान के सोपान पर बाबा विनोबाजी सह, अनन्त के साम्बल से श्री जे. कृष्णमूर्ति सह एवं महाविदेह में होते हुए भी यहाँ, मानो भारत की धरा पर, साक्षात् साँस लेते संचरण करते हुए श्रीमद् राजचन्द्रजी सह इस अल्पात्मा का स्वल्प अंतर्विहार चला है। इन सब का यहाँ विमलादीदी के सन्दर्भ में थोड़ा ही संस्पर्श करेंगे।

सर्वोदय यात्रा

आठ वर्ष तक भूदान में उसका आध्यात्मिक आयाम संयोजने जुड़े हुए दीदी ने, 'प्रबुद्ध जीवन' (गुजराती) के सम्पादक श्री परमानंद कापडिया के लेख एवं 30-6-1963 के पत्र के उत्तर में, लिखा था कि —

"मैं १९५२ में भूदान आंदोलन में जुड़ी तब लोककल्याण की कोई एक प्रवृति समझकर उस में जुड़ी नहीं थी, परंतु उस आंदोलन का जो एक आध्यात्मिक पहलु था उस से मैं मुग्ध बनी रही और उस कारण से मैं आकर्षित हुई थी। मनुष्य में रही हुई 'innate goodness' विषयक -मूलभूत शुभ तत्त्व विषयक - श्रद्धा पर आधारित ऐसे इस क्रान्तिकारी आंदोलन ने मनुष्यजाति के प्रति प्रेम से भरे हुए मेरे चित्त को आकर्षित किया था। उस से सम्बन्धित प्रवृत्ति के पीछे मेरे भीतर रही हुई कर्तृत्वशक्ति को अभिव्यक्त करने की कोई ~~खास~~ विशेष वृत्ति नहीं थी, परंतु मनुष्यजाति की ओर के प्रेम को अभिव्यक्त करने का आशय था..... .... (इस आंदोलन में) जीते जागते भारत का यह प्रत्यक्ष परिचय मेरे लिये एक अलग ही तरह का अनुभव था.."

(सन्दर्भ: विमल संस्मरणो- गुज. प्रभामरचंद: ९)

भूदान छोड़कर आबु निवासी बने हुए और चेतना के नये आयाम को उद्घाटित करने पर्वतों की गोद खोजनेवाले विमलाबहन विषयक श्री. परमानंद कापड़िया के उपर्युक्त लेख और उनकी कवयित्री सुपुत्री श्रीमती गीताबहन परीख ने किये हुए दीदी के "मौन के अनुनाद" के "नवो पल्टो" शीर्षक गुजराती काव्यानुवाद से अनेक शोधकों-साधकों को तब उनकी नई पहचान और (परिचय) जानकारी मिली थी। इन सभी स्वनामधन्य साधकों में से सर्वश्री त्रिकमलाल महासुखराम, बिंदुकाका, भोगीभाई आदि को तब आबु में दीदी के द्वारा श्री. जे. कृष्णमूर्ति का भी परिचय प्राप्त हुआ। "कृष्णमूर्ति के एवं श्रीमद् राजचन्द्र के विषय में उन दिनों बातें विशेष होती थीं। श्री. कृष्णमूर्ति के प्रवचन पढ़ने के बाद उन पर चर्चा भी होती थी। श्री. त्रिकमभाई को श्रीमद् राजचन्द्र पर प्रचंड श्रध्धा थी। श्रीमद् राजचन्द्र के पद - विशेष कर के 'आत्मसिध्धि' वे अपनी बुलन्द आवाज़ से पढ़कर सुनाते थे।"

("विमल संस्मरणो" पृ. ९)

## समग्रता की यात्रा: श्रीमद्जी और श्री. जे. कृष्णमूर्ति

समग्रता की इस आत्मखोज-यात्रा में दीदी को जितना परिचय श्री. कृष्णमूर्ति का प्रत्यक्ष रूप से हुआ था (देखें 'on an eternal voyage' आदि), उतना ही परिचय श्रीमद् राजचन्द्र जी का परोक्ष रूप से हुआ उनके अथाह साहित्य के अवगाहन-अनुशीलन और

"मैं १९५२ में भूदान आंदोलन में जुड़ी तब लोककल्याण की कोई एक प्रवृत्ति समझकर उस में जुड़ी नहीं थी, परंतु उस आंदोलन का जो एक आध्यात्मिक पहलु था उस से मैं मुग्ध बनी रही और उस कारण से मैं आकर्षित हुई थी। मनुष्य में रही हुई 'innate goodness' विषयक – मूलभूत शुभ तत्त्व विषयक – श्रद्धा पर आधारित ऐसे इस क्रान्तिकारी आंदोलन ने मनुष्यजाति के प्रति प्रेम से भरे हुए मेरे चित्त को आकर्षित किया था। उस से सम्बन्धित प्रवृत्ति के पीछे मेरे भीतर रही हुई कर्तृत्वशक्ति को अभिव्यक्त करने की कोई ~~खास~~ विशेष वृत्ति नहीं थी, परंतु मनुष्यजाति की ओर के प्रेम को अभिव्यक्त करने का आशय था..... .... (इस आंदोलन में) जीते जागते भारत का यह प्रत्यक्ष परिचय मेरे लिये एक अलग ही तरह का अनुभव था.."

(सन्दर्भ: विमल संस्मरणो - गुज. प्रभामरचंद: ९)

भूदान छोड़कर आबु निवासी बने हुए और चेतना के नये आयाम को उद्घाटित करने पर्वतों की गोद खोजनेवाले विमलाबहन विषयक श्री. परमानंद कापड़िया के उपर्युक्त लेख और उनकी कवयित्री सुपुत्री श्रीमती गीताबहन परीख ने किये हुए दीदी के "मौन के अनुनाद" के "नवो पलटो" शीर्षक गुजराती काव्यानुवाद से अनेक शोधकों-साधकों को तब उनकी नई पहचान और (परिचय) जानकारी मिली थी। इन सभी स्वनामधन्य साधकों में से सर्वश्री त्रिकमलाल महासुखराम, बिंदुकाका, भोगीभाई आदि को तब आबु में, दीदी के द्वारा श्री. जे. कृष्णमूर्ति का भी परिचय प्राप्त हुआ। "कृष्णमूर्ति के एवं श्रीमद् राजचन्द्र के विषय में उन दिनों बातें विशेष होती थीं। श्री. कृष्णमूर्ति के प्रवचन पढ़ने के बाद उन पर चर्चा भी होती थी। श्री. त्रिकमभाई को श्रीमद् राजचन्द्र पर प्रचंड श्रध्धा थी। श्रीमद् राजचन्द्र के पद – विशेष कर के 'आत्मसिध्धि' वे अपनी बुलन्द आवाज़ से पढ़कर सुनाते थे।"

("विमल संस्मरणो" पृ. ९)

## समग्रता की यात्रा: श्रीमद्जी और श्री. जे. कृष्णमूर्ति

समग्रता की इस आत्मखोज-यात्रा में दीदी को जितना परिचय श्री. कृष्णमूर्ति का प्रत्यक्ष रूप से हुआ था (देखें 'on an eternal voyage' आदि), उतना ही परिचय श्रीमद् राजचन्द्र जी का परोक्ष रूप से हुआ उनके अथाह साहित्य के अवगाहन-अनुशीलन और

"सप्तभाषी आत्मसिद्धि" : दीदी का ही योगदान-प्रदान, इस अल्पज्ञ का नहीं !

इस पत्र के अर्से में ही दीदी ने इस पंक्तिलेखक को उसके 'सप्तभाषी आत्मसिद्धि' ग्रंथ-सम्पादन सृजन के अवरुद्ध कार्य में कैसी कैसी प्रेरणा और सहायता दी उसका तो लम्बा इतिहास बन गया है। उस का किंचित् उल्लेख "Voyage within with Vimalajee" पुस्तक में मार्च 1994 की मुलाकातों में और यत्र-तत्र अन्यत्र भी किया गया है। दीदी के (इस विषय परिशिष्ट में यत्र-तत्र) 15.8.1996, 28.8.1996 आदि पत्रों के उपरान्त उन्होंने आत्मसिद्धि की आंतर राष्ट्रीय शताब्दी के प्रसंग पर, 'सप्तभाषी आत्मसिद्धि' की प्रथम हस्तलिखित प्रत का शिकागो-अमरिका में विमोचन करते हुए, उसका असामान्य "पुरोवचन" इस सम्पादक को लिख भेजा। 28-8-1996 को ही लिखित दीदी का यह 'आत्मसिद्धि'-महिमा विषयक महामूल्यवान, समृद्ध, सर्वांग सुंदर पुरोवचन सप्तभाषी आत्मसिद्धि ग्रंथ में 'GLORY BE TO SRI RAJCHANDRA' मुद्रित हुआ है और यहाँ नीचे भी अंकित कर दिया गया है, वह शिकागो के उपर्युक्त समारोह में सराहा गया। यह पुरोवचन स्वयं में ही एक दिशासूचक दृढ़ दस्तावेज बन चुका है। उस का एक एक शब्द चिंतनीय है। अदृष्ट ऐसे श्रीमद्जी को वह दृष्ट और नितान्त सुस्पष्ट करता है, सजीवनमूर्ति के रूप में दर्शित करा देता है। श्रीमद्-साहित्य के अनेक प्रबुद्ध अध्येताओं और चिंतकों की पंक्ति में उनके इस 'गागर में सागर' समान लघुलेख-प्रस्तुतीकरण का नूतन और अनोखा स्थान है। वह उनकी श्रीमद्-श्रद्धा और समर्पिता व्यक्त करता है। "सप्तभाषी आत्मसिद्धि" के प्रकाशन के सम्बन्ध में तो दीदी इस श्रद्धा से भी सविशेष उपकारक बने हैं! श्रीमद्जी, सहजानंदघनजी, पं॰ सुखलालजी, गुरुदयाल मल्लिकजी और माताजी धनदेवीजी समान सर्व प्रेरणादाता उपकारकों के मानों वे साक्षात् प्रतिनिधि बनकर आये और आधार बन रहे। बरसों का यह कसौटीपूर्ण असाध्य सम्पादन कार्य उन्होंने ही संपन्न करवाया कि जिसके लिये पद्मश्री डॉ. कुमारपाल देसाई ("गुजरात समाचार" दि. 28-9-2006) एवं डॉ. धनवंत शाह ("प्रबुद्ध जीवन" दि. 16-11-2006) जैसे सहृदयी मित्र इस लेखक-सम्पादक को श्रेय देते रहते हैं और जो एक 'निमित्तमात्र' से विशेष कुछ नहीं है। स्वयं दीदी भी इसके लिये इस अल्पज्ञ को जब अभिनंदित करती हैं (परिशिष्ट में उद्धृत उनके दो उपर्युक्त पत्रादि द्वारा) तब उनकी यह 'अनुग्रह-लीला' श्रेयुक्त बना देती है। इस से ही आगे बढ़कर, इस 'सप्तभाषी' के उपरान्त, समग्र श्रीमद्-साहित्य के आंग्ल

"सप्तभाषी आत्मसिद्धि" : दीदी का ही योगदान-प्रदान, इस अल्पज्ञ का नहीं !

इस पत्र के अर्से में ही दीदी ने इस पंक्तिलेखक को उसके 'सप्तभाषी आत्मसिद्धि' ग्रंथ-सम्पादन सृजन के अवरुद्ध कार्य में कैसी कैसी प्रेरणा और सहायता दी उसका तो लम्बा इतिहास बन गया है। उस का किंचित् उल्लेख "Voyage within with Vimalajee" पुस्तक में मार्च 1994 की मुलाकातों में और यत्र-तत्र अन्यत्र भी किया गया है। दीदी के (इसे विशेष परिशिष्ट में यत्र-तत्र) 15.8.1996, 28.8.1996 आदि पत्रों के उपरान्त उन्होंने आत्मसिद्धि की आंतर राष्ट्रीय शताब्दी के प्रसंग पर, 'सप्तभाषी आत्मसिद्धि' की प्रथम हस्तलिखित प्रत का शिकागो-अमरिका में विमोचन करते हुए, उसका असामान्य "पुरोवचन" इस सम्पादक को लिख भेजा। 28-8-1996 को ही लिखित दीदी का यह 'आत्मसिद्धि'-महिमा विषयक महामूल्यवान, सारगर्भ, सर्वांग सुंदर पुरोवचन सप्तभाषी आत्मसिद्धि ग्रंथ में 'GLORY BE TO SRI RAJCHANDRA' मुद्रित हुआ है और यहाँ नीचे भी अक्षरशः दिया गया है, वह शिकागो के उपर्युक्त समारोह में सराहा गया। यह पुरोवचन स्वयं में ही एक दिशासूचक दृढ़ दस्तावेज बन चुका है। उस का एक एक शब्द चिंतनीय है। अदृष्ट ऐसे श्रीमद्‌जी को यह दृष्ट और नितान्त सुस्पष्ट करता है, सजीवनमूर्ति के रूप में दर्शित करा देता है। श्रीमद्-साहित्य के अनेक प्रबुद्ध अध्येताओं और चिंतकों की पंक्ति में उनके इस 'गागर में सागर' समान लघुलेख-प्रस्तुतीकरण का नूतन और अनोखा स्थान है। वह उनकी श्रीमद्-श्रद्धा और समर्पिता व्यक्त करता है। "सप्तभाषी आत्मसिद्धि" के प्रकाशन के सम्बन्ध में तो दीदी इस श्रद्धा से भी सविशेष उपकारक बने हैं! श्रीमद्‌जी, सहजानंदघनजी, पं. सुखलालजी, गुरुदयाल मल्लिकजी और माताजी धनदेवीजी समान सर्व प्रेरणादाता उपकारकों के मानों वे साक्षात् प्रतिनिधि बनकर आये और आधार बन रहे। बरसों का यह कसौटीपूर्ण असाध्य सम्पादन कार्य उन्होंने ही संपन्न करवाया कि जिसके लिये पद्मश्री डॉ. कुमारपाल देसाई ("गुजरात समाचार" दि. 28-9-2006) एवं डॉ. धनवंत शाह ("प्रबुद्ध जीवन" दि. 16-11-2006) जैसे सहृदयी मित्र इस लेखक-सम्पादक को श्रेय देते रहते हैं और जो एक 'निमित्तमात्र' से विशेष कुछ नहीं है। स्वयं दीदी भी इसके लिये इस अल्पज्ञ को जब अभिनंदित करती हैं (परिशिष्ट में उद्धृत उनके दो उपर्युक्त पत्रादि द्वारा) तब उनकी यह 'अनुग्रह-लीला' शोभायुक्त बना देती है। इस से ही आगे बढ़कर, इस 'सप्तभाषी' के उपरान्त, समग्र श्रीमद्-साहित्य के आंगल

सुदृढ़ करवाते रहे, श्रीमद्-साहित्य को बहुजनहिताय प्रसारित करने अनुरोध प्रयास, सहाय सदा करते-करवाते रहे। उनका अनेक बार का यह अंतरबोध-प्रबोध मानों अंतरिक्ष से सतत प्रतिध्वनित हो रहा है—

" गुजरात के और भारत के युवान अब विवेकानंद को भूल जायँ, श्रीमद् राजचन्द्र को सतत अपनायें। उनके साहित्य को याद करें उनके वचनों को पॉकेट बूक्स बनवाकर हृदय में भी लिखें। उनकी 'मोक्षमाला' जैसी कृतियों को पाठ्यपुस्तक बनवायें। उनकी 'पुष्पमाला'ओं को जीवन में धारण करें। ..... "

दीदी के इस महत्त्वपूर्ण युगसंदेश को तत्काल कार्यान्वित करते हुए एक ओर से उनके द्वारा प्रेरित आध्यात्मिक क्रान्ति शिबिर शृंखला में श्रीमद्जी की इस 'मोक्षमाला' कृति पर शिबिर आयोजित किया गया हम्पी कर्नाटक के श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम पर। दूसरी ओर से 'पंचभाषी पुष्पमाला' की पॉकेट बूक्स का मुद्रण-प्रकाशन करने का सौभाग्य इस लेखक को प्राप्त हुआ, यह परम अनुग्रह है।

वर्तमान काल के लिये दीदी के इस युगसंदेश को अपनाने की चुनौती आकर खड़ी है आक्रांत, आतंकित, अशांत विश्व समक्ष। आत्मार्थी साधकों के लिये तो उनका यह संदेश विशेष महत्त्व रखता है:—

'आत्मापरक'

" आत्मविकास के लिये अध्ययन-चिंतन निस्संदेह आवश्यक, परंतु जीवन की कृतार्थता केवल पढ़ने-सोचने में निहित नहीं है, कृतार्थता है जीने में। इसलिये जीवन को आत्मदृष्टि, आत्मवृत्ति और आत्मभाव में बीताना चाहिये। आत्मद्रव्य में रममाण होने के लिये, आत्मभाव में बरतने के लिये जो वातावरण अनिवार्य प्रतीत हो वह बाहर-भीतर निर्मित करना चाहिये।

" जहाँ आत्मद्रव्य को भुलाकर परद्रव्य स्वीकार करना अनिवार्य गिना जाता हो वहाँ साधक या तो आत्मद्रव्य में और आत्मदृष्टि में अडोल रहे या वहाँ से अपने आपको दृढ़तापूर्वक हटा ले। जीवन-साधक के लिये दूसरा कोई उपाय नहीं है।

" जबतक साधक दैनिक जीवन में किसी भी कीमत पर अनात्मा और असत्य के साथ समझौता करे अथवा तो स्वजनों ने किया हुआ समझौता स्वीकार करे, तबतक अधूरापन प्रतीत होगा ही होगा।

" जीवन में उच्च-उच्चतर ऐसे भेद नहीं रहते। आत्माभिमुख जीवन-आत्मविमुख जीवन, आत्मनिष्ठ जीवन-आत्मविरोधी जीवन, आत्मरत जीवन और आत्मविसंगत जीवन ऐसे पर्याय प्रवर्तित

सुदृढ़ करवाते रहे, श्रीमद्-साहित्य को बहुजनहिताय प्रसारित करने अनुरोध प्रयास, सहाय सदा करते-करवाते रहे। उनका अनेक बार का यह अंतरबोध-प्रबोध मानों अंतरिक्ष से सतत प्रतिध्वनित हो रहा है-

"गुजरात के और भारत के युवान अब विवेकानंद को भूल जायँ, श्रीमद् राजचन्द्र को सतत अपनायें। उनके साहित्य को याद करें। उनके वचनों को पॉकेट बुक्स बनवाकर हृदय में भी लिखें। उनकी 'मोक्षमाला' जैसी कृतियों को पाठ्यपुस्तक बनवायें। उनकी 'पुष्पमाला'ओं को जीवन में धारण करें। ....."

दीदी के इस महत्त्वपूर्ण युगसंदेश को तत्काल कार्यान्वित करते हुए एक ओर से उनके द्वारा प्रेरित आध्यात्मिक क्रान्ति शिविर शृंखला में श्रीमद्जी की इस 'मोक्षमाला' कृति पर शिविर आयोजित किया गया हम्पी कर्नाटक के श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम पर। दूसरी ओर से 'पंचभाषी पुष्पमाला' की पॉकेट बुक्स का मुद्रण-प्रकाशन करने का सौभाग्य इस लेखक को प्राप्त हुआ, यह परम अनुग्रह है।

वर्तमान काल के लिये दीदी के इस युगसंदेश को अपनाने की चुनौती आकर खड़ी है आक्रांत, आतंकित, अशांत विश्व समक्ष। आत्मार्थी साधकों के लिये तो उनका यह संदेश विशेष महत्त्व रखता है:-

आत्मापरक

"आत्मविकास के लिये अध्ययन-चिंतन निस्संदेह आवश्यक, परंतु जीवन की कृतार्थता केवल पढ़ने-सोचने में निहित नहीं है, कृतार्थता है जीने में। इसलिये जीवन को आत्मदृष्टि, आत्मवृत्ति और आत्मभाव में बीताना चाहिये। आत्मद्रव्य में रममाण होने के लिये, आत्मभाव में बरतने के लिये जो वातावरण अनिवार्य प्रतीत हो वह बाहर-भीतर निर्मित करना चाहिये।

"जहाँ आत्मद्रव्य को भुलाकर परद्रव्य स्वीकार करना अनिवार्य गिना जाता हो वहाँ साधक या तो आत्मद्रव्य में और आत्मदृष्टि में अडोल रहे या वहाँ से अपने आपको दृढ़तापूर्वक हटा ले। जीवन-साधक के लिये दूसरा कोई उपाय नहीं है।

"जबतक साधक दैनिक जीवन में किसी भी कीमत पर अनात्मा और असत्य के साथ समझौता करे अथवा तो स्वजनों ने किया हुआ समझौता स्वीकार करे, तबतक अधूरापन प्रतीत होगा ही होगा।

"जीवन में उच्च-उच्चतर ऐसे भेद नहीं रहते। आत्माभिमुख जीवन-आत्मविमुख जीवन, आत्मनिष्ठ जीवन-आत्मविरोधी जीवन, आत्मरत जीवन और आत्मविसंगत जीवन ऐसे पर्याय प्रवर्तित

## विश्वमहिमा हो श्रीमद् राजचन्द्र की इस परावाणी की परमप्रभा का!

" गुजरात के महान संत-कवि श्रीमद् राजचन्द्र द्वारा लिखित 'आत्मसिध्धि' भारत की सात भाषाओं में अनूदित हुई है और वह 'सप्तभाषी आत्मसिध्धि' शीर्षक से प्रकाशित हो रही है यह जानकर मैं अति आनंद अनुभव कर रही हूँ।

" आत्मसाक्षात्कार के उस विज्ञान का प्रकाशन बहुत पहले होना चाहिये था। एक आत्मानुभवसंपन्न गुरु और एक जिज्ञासु शिष्य के बीच के संवाद के स्वरूप की उस काव्यात्मक कृति में संग्रहीत है - भारतीय अध्यात्म का सारसर्वस्वपूर्ण निष्कर्ष। जैनधर्म और हिंदुधर्म दोनों की सीमाओं के वह पार पहुँचता है। उसमें वैश्विक दर्शनसामग्री निहित है।

" कथ्यवस्तु का वैज्ञानिक सम्भालयुक्त निरूपण, शब्दचयन में गाणितिक लाघव और शैली की रसप्रवाहिता सचमुच ही मुग्ध कर दें वैसा है।

" मुक्ति-मोक्ष यह कोई प्राप्त करने का ध्येय नहीं है। वह एक वास्तविकतापूर्ण संस्थिति है कि जो समझने की और आत्मसात करने की है। व्यक्ति को चेतना के उस पसंदगी-विहीन - पूर्वग्रहविहीन - ग्रंथीविहीन धरातल पर आकर उसकी अप्रमत्त, प्रमादरहित सजगता - सभानता के साथ जीने का है। (*1)

" राजचन्द्र कहते हैं कि शुष्क, धार्मिक बाह्यक्रियाकांड अथवा कतिपय अनुष्ठानों के भावावेशपूर्ण पुनरुच्चारण - तोतारट - कोई आंतरिक परिवर्तन ला नहीं सकते। बंधन के मूलभूत कारण हैं राग और द्वेष। वस्तुस्थिति - सत्य - के अंतिम स्वरूप - विषयक अज्ञान, एक व्यक्ति के अस्तित्व - जीवितव्य - विषयक अज्ञान, व्यक्ति के अपने होनेपन - विषयक अज्ञान उत्पन्न करता है राग-द्वेष का असंतुलन। नींव में रहा हुआ यह मूलभूत अज्ञान ही सारे ही दुःखों वेदनाओं यातनाओं का मूल स्रोत है। (*2) अज्ञान का विलोपन ही समझदारी के प्रकाश के आने का उद्गमस्थान। समझदारी का, सजगता का प्रकाश अंधकार को बिखेर देता है। (*3)

(*1) अर्थात 'मैं आत्मा हूँ' की इस आत्मभावना पूर्वक जीने का कि— "शुध्ध बुध्ध चैतन्यघन स्वयंज्योति सुखधाम, बीजुं कहिये केटलुं? कर विचार तो पाम।" (117)

(*2) "राग, द्वेष, अज्ञान ए मुख्य कर्मनी ग्रंथ; थाय निवृत्ति जेहथी ते ज मोक्षनो पंथ" (100)

(*3) "कोटि वर्षनुं स्वप्न पण जाग्रत थतां शमाय; तेम विभाव अनादिनो ज्ञान थतां दूर थाय।" (114)

" राजचन्द्र के अनुसार सदेह-सजीवनमूर्ति / जिवित विदेही व्यक्ति-विभूति के साथ की घनिष्ठ निकटता और ऐसे व्यक्ति की जीवन जीने की जीवनशैली से बोध प्राप्त करने का सीखना यह नितान्त आवश्यक है। इस उद्देश्य को ग्रंथों से अथवा परंपराओंसे एकत्र किया हुआ शाब्दिक ज्ञान शायद ही पूर्ण करता है।(*4)

" इस ग्रंथरत्न का गहन अध्ययन करने का मैं प्रत्येक सनिष्ठ साधक को सुदृढ़रूप से अनुरोध करती हूँ। श्री. राजचन्द्र के शब्द सर्वोच्च-परम परालोक की प्रज्ञा के आंदोलनों के द्वारा विद्युत-स्पर्शित होकर अनुप्राणीत बने हुए हैं- रससिक्त हुए हैं। आत्मसिद्धि की प्रत्येक गाथा में वे प्रत्यक्ष, सदेह सजीव हैं।"

— विमला ठकार : 24.8.1996

श्रीमद् राजचन्द्रजी के विषय में इस प्रकार सत्यभाषी 'आत्मसिद्धि' के इस पुरोवचन या 'अप्रमादयोग' अथवा 'पर्युषण प्रसादी' इत्यादि प्रवचन-पुस्तकों में ही नहीं, स्थान स्थान के वार्तालापों में, शिविर प्रवचनों में भी दीदी अपना अहोभाव-आदर अनुमोदना भाव-बहाते रहे और श्रीमद्-पत्रों का अध्ययन करवाते रहे। डलहोसी, माधवपुर, महाबळेश्वर एवं अन्य स्थान इस तथ्य के साक्षी हैं। एकाध दृष्टांत ही देखें।

श्रीमद् के एक परम भक्तदंपति माधवपुर में दीदी से मिलने के लिये आये और दोनों कहने लगे कि, "ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि जब देह छोड़ें तब समताभाव बना रहे।" दीदी ने कहा कि "मृत्यु के समय ही समताभाव बना रहे ऐसा क्यों? ... समाधिस्थ जीवन का ही आशीर्वाद लीजिये। श्रीमद् ने तो कहा ही है कि, 'तुम हो मोक्षस्वरूप!' यह भी कहा है कि 'निजपद लहुं निज मांहि'। निजपद में स्थित होने के बाद जन्म मृत्यु होते हैं क्या? xxx ममत्व विलीन होता जाय, त्यों त्यों समत्व प्रकट होता जाता है।"

बाद में दीदी ने श्रीमद राजचन्द्र की आत्मसिद्धि की गाथाएं गाईं — "भास्यो देहाध्यासथी आत्मा देह समान,
पण ते बन्ने भिन्न छे, जेम असि ने म्यान।"

footnote

(*4) मानादिक शत्रु महा निजछंदे न मराय,
जातां सद्गुरु शरणमां, अल्प प्रयासे जाय।

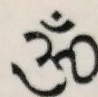
"यह भान, यह होश सतत बना रहे। सजगता रहे।
समत्व आत्मा का शील है, स्वभाव है। इस शील-स्वभाव का आनंद पाने के लिये ही मानवदेह का अपूर्व अवसर संप्राप्त हुआ है।
"जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र गाये जा।
"ज्योतिस्वरूप का दर्शन होने के पश्चात् सुखदुःख का संवेदन नहीं रहता। जन्म मृत्यु का भय नहीं रहता।.....
✓ "गुजरात की प्रजा पर तो मेरे श्रीमद का बड़ा ऋण है। विवेकानंद के समान ही उनकी वाणी है। मोहमयी मुंबई नगरी में, पेढ़ी पर बैठकर उनकी अविरत साधना चली। वे 'व्यक्ति' नहीं थे, वे तो एक Phenomenon (साक्षात् ज्ञानतत्त्व) थे। ईडर के महाराजा ने उनके गत जन्मों के विषय में पूछा तब उन्होंने कहा था कि, 'हम महावीर के शिष्य थे।'....."
डीडी ने फिर कहा,
✓ "श्रीमद् यदि नहीं होते तो मोहनदास करमचंद में रहा हुआ महात्मा गाँधी नहीं होता।
"गुजरात की प्रजा में वाणिज्य के संस्कार इतने गाढ़ (गहन) है कि मोक्षार्थी की बात, श्रीमद् के दर्शन की बात, कौन समझे? हाँ, लोग रोज देरासर (जिनमंदिर) जायें, दानधर्म करें उसमें ही धर्म का आचरण करने का संतोष मान ले। 'पलभर का प्रमाद नहीं और रत्तीमात्र का असत्य नहीं' - यह जीने के लिये तो सुविधा-सुरक्षा को दाँव पर लगाना पड़े! उसके लिये तो कीमत चुकानी पड़े!! ऐसे (यह) जीने का साहस है? तैयारी है?
"श्रीमद् के सोभागभाई पर लिखे हुए पत्र तो अमूल्य खज़ाना है। उस में साधक के लिये क, ख, ग से लेकर, निजपद तक की यात्रा का सफ़र लोकभोग्य भाषा में प्रस्तुत किया गया है।"
("विमल सत्त्व": प्रभाबेन मरचंट : पृ. २६३-६४ गुजराती)
इस प्रकार डीडीने श्रीमद्जी की सर्वोपकारक परा-वाणी की, उसकी परमप्रभा की, उनके महाप्रदान की महिमा सर्वत्र, जहाँ विचरण किया वहाँ, विश्वभर में गाई और प्रसारित की।
श्रीमद् को आत्मसात् करती चली डीडी की जीवनयात्रा का यह कोई अल्प प्रदान है? प्रतिफलन है?

विशेष परिशिष्ट B 28

पूर्व उल्लिखित (पृ. 21) 'सप्तभाषी' ग्रंथ विषयक दीदी की 'अनुग्रह-लीला' के दो पत्र, जिनमें वे उनके ही इस कृपा-कार्य-प्रतिफलन के लिये इस 'निमित्तमात्र' अल्पज्ञ सम्पादक का अभिनंदन कर रही हैं!
कैसी है उनकी यह दूसरों को श्रेय और यश दिलवाने की कला और करामात?



• 'SHIVKUL' DALHOUSIE, HIMACHAL PRADESH 176 304. PHONE : 2262
• 'SHIVKUTI' MOUNT ABU, RAJASTHAN 307 501. PHONE : 3154



VIMALA THAKAR

GLORY BE TO SRI RAJCHANDRA

*I am very happy to learn that Atma Siddhi written by Sri Rajchandra - the great poet-saint of Gujarat is translated into seven languages of India: that it is being published under the caption "Sapta-Bhashi Atmasiddhi".*

*Publication of that Science of Self-Realisation ought to have been done long ago. In that poetic treatise having a format of a dialogue between an emancipated master and an enquiring student, is contained the essence of Indian Spirituality. It transcends the frontiers of both Jainism and Hinduism. It has a global content.*

*The scientific handling of the theme, the mathematical precision in the choice of words and the lucidity of style are simply enchanting.*

*Liberation is not a goal to be attained. It is a fact which has to be perceived and understood. Getting grounded in the unconditionally free nature of consciousness, one has to live with its awareness.*

*Dry theological dogmas or sentimental repetition of certain rituals do not bring about transformation says Rajchandra. Raga and Dwesha - infatuation and hatred - are the root causes of bondage. Ignorance about the ultimate nature of reality, about the essence of one's Being causes the imbalance of Raga-Dwesha. That basic ignorance is the source of all suffering. Eradication of ignorance is the emergence of Understanding. The Light of Understanding dispels darkness.*

*According to Rajchandra, close proximity to a living liberated person and learning from such a person's way of living is indispensable! Verbal knowledge gathered from books or traditions hardly serve that purpose.*

*I strongly recommend a serious study of this jewel of a book to every genuine sadhaka. The words of Sri Rajchandra are charged with the vibrations of Supreme Intelligence. He is alive in every verse of Atma Siddhi.*

*Vimala Thakar*
*28-8-1996*

# सर्व अंतर्यात्री साधकों को श्रीमद्-सन्मुख करते दीदी

उपर्युक्त उपक्रम में, 'आत्मसिद्धि' में सन्निहित अंतर्दर्शन-अंतर्यात्रा को दीदी सदा सर्वत्र बहाये चली जाती है अपने प्रबल प्रांजल प्रबोध से साधकों के शिबिरों में हर जगह वे-श्रीमद्जी से बिल्कुल अनजान प्रारंभिक श्रोताओं को भी-समझाये चलती हैं-अद्भुत सहजता पूर्वक। इस विषय में कुछ अधिक सस्पर्श। 1988 के महाबळेश्वर के ध्यानशिबिर में 'यात्रा अपने भीतर' शीर्षक प्रश्नोत्तर में वे इस बात को इस प्रकार स्पष्ट करती हैं:-

"xxxxx यह यात्रा अपने से कहीं दूर जाने की नहीं है। दूर कहीं जाना हो तो कौन-सा मार्ग लें-यह विकट प्रश्न हो सकता है। पर यह तो स्वयं तक की ही यात्रा है। जो स्वरूप पता नहीं है उस स्वरूप को ही समझ भर लेना है।

" जो स्वरूप समझे बिना पाया दुःख अनन्त।
समझाया वह, उन्हें नमूं श्री सद्गुरु भगवन्त।" -(आत्मसिद्धि)

"श्रीमद् राजचन्द्र नाम के एक महात्मा सन्त युवक गुजरात में अभी अभी हो गये, जिन्हें गाँधीजी ने लगभग गुरु की भाँति माना था, अपनी अध्यात्म-जिज्ञासा का समाधान उनसे पत्रसम्पर्क द्वारा पाया था।* उन रायचन्दभाई ने 'आत्मसिद्धिशास्त्र' नाम का एक छोटा सा (कुल १४२ दोहों का) ग्रन्थ सरल गुजराती में लिखा। उसका प्रारम्भ ही उक्त पद्य से किया।-'जो स्वरूप मैंने समझा नहीं था, जिसके अज्ञान के कारण जन्म-जन्मान्तरों से अनन्त दुःख भोगते-भोगते यह जीव आया है, वह स्वरूप जिन्होंने मुझे समझा दिया-उन गुरुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ।'

"अर्थात् अन्ततः यात्रा किसलिये है? स्वरूप को समझने के लिये अपने से अपने सत्य तक ही यह यात्रा है। और इसी स्वरूप में विश्वरूप भरा हुआ है। कोई विश्वरूप से प्रारम्भ करके आत्मस्वरूप तक पहुँचते हैं यानी भक्तिमार्ग पकड़ते हैं, और कोई स्वरूप से ही आरम्भ करके स्वरूप में ही समाते हैं।-इसी में विश्वरूप को समझ जाते हैं।(*2) इसलिये साधना में अपने से दूर कहीं जाने को दिशा ही नहीं है। और पारमार्थिक दृष्टि से सच कहें तो-'अनुपाय एव उपायः।' किसी भी

footnote

(*) प्रत्यक्ष सम्पर्क के द्वारा भी बम्बई में।
(*2) 'जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ' = जो एक को, आत्मा को जानता है वह सबको, सारे जगत को जानता है।' - निर्ग्रन्थ प्रवचन।

क्रियाकाण्ड के घटाटोप या शब्दों के पसारे से वह स्वरूप हाथ नहीं आता। बस समझने के लिये जितना-सा पुरुषार्थ करना पड़े उतना ही अभिप्रेत है। यही प्रथम और अन्तिम चरण है। (That is the first & the last step.)"

("अशब्द की ओर" पृ. 49)

## श्रीमद् जैसा जीवनव्यवहार

और ऐसा स्वरूप को सर्वथा समझनेवाला साधक विश्व-व्यवहार कैसा करेगा ? व्यवहार में किस प्रकार चलेगा ? ... वह 'सर्वात्म में समदृष्टि' देगा। सर्व आत्माओं में अपनी आत्मा देखेगा। सामनेवाले के दुःख, चिंता स्वयं हरण कर लेगा। अध्यात्म को व्यवहार में उतारते हुए रत्तीभर के असत्य का आचरण नहीं करने का आग्रह रखनेवाले दीदी यहाँ पर श्रीमद् राजचन्द्र जी का ऐसा व्यवहार भी ध्यानपूर्वक निहारते हैं और उसकी भूरि भूरि प्रशंसा-अनुमोदना करते हैं। श्रीमद्-जीवन के प्रसिद्ध प्रसंग को उद्धृत करते हुए अंतर्यात्री साधकों से वे कहते हैं:—

" xxx फिर व्यवहार में आप करेंगे—जैसा श्रीमद् राजचन्द्र ने कभी किया था। सौदा किया और जिसके साथ सौदा हुआ था, जो देनेवाला था diamonds (हीरे) ला करके,—उसने देखा, उसके दाम बढ़ गये। prices बढ़ गयीं। वह चिन्ता में था कि contract तो श्रीमद् के साथ पहले कर चुका। न दूँ तो सौदे में अप्रामाणिक रहूँगा। देता हूँ तो इतने लाखों का मेरा नुकसान होता है।

(श्रीमद्) "उसकी खबर मिलते ही सुबह उठकर उसके घर जाते हैं, कागज़ जेब में रखकर। कहते हैं, 'चिन्ता में हो, मेरे भाई? तुम्हारी चिन्ता का कारण मैं लाया हूँ। यह सौदे का कागज़ है।' फाड़ दिया। (श्रीमद्) राजचन्द्र दूध पी सकता है, लहू नहीं पी सकता।" अब क्या कहेंगे आप ? कैसा मूर्ख था ? उसका क्या दोष था ? prices बढ़ गई, तो श्रीमद् राजचन्द्र का क्या नुकसान ? उसका तो कोई गुनाह नहीं था। इतने पैसे का नुकसान किया! वह व्यवहारी आदमी नहीं था।

"इसलिये मैंने कहा कि व्यावहारिक मान्यताएँ और सत्य का स्पर्श, आज की सुरक्षा की भावना, इसके लिये होनेवाला प्रयास, पुरुषार्थ, इनकी qualitative गुणात्मक भिन्नता रहेगी।

" संसार में रहते हुए, सत्य के रास्ते पर चलना हो तो आज जिसको संसार सफलता-विफलता कहता है, सम्मान-अपमान कहता है

क्रियाकाण्ड के घटाटोप या शब्दों के पसारे से यह स्वरूप हाथ नहीं आता। बस समझने के लिये जितना-सा पुरुषार्थ करना पड़े उतना ही अभिप्रेत है। यही प्रथम और अन्तिम चरण है। (That is the first & the last step.)!"

("अशब्द की ओर" पृ.49)

श्रीमद् जैसा जीवनव्यवहार

और ऐसा स्वरुप को सर्वथा समझनेवाला साधक धिख्य-व्यवहार कैसा करेगा ? व्यवहार में किस प्रकार चलेगा ?... वह 'सर्वात्म में समदृष्टि' देगा। सर्व आत्माओं में अपनी आत्मा देखेगा। सामनेवाले के दुःख, चिंता स्वयं हरण कर लेगा। अध्यात्म को व्यवहार में उतारते हुए रत्तीभर के असत्य का आचरण नहीं करने का आग्रह रखनेवाले दीदी यहाँ पर श्रीमद् राजचन्द्र जी का ऐसा व्यवहार भी ध्यानपूर्वक निहारते हैं और उसकी भूरि भूरि प्रशंसा-अनुमोदना करते हैं। श्रीमद्-जीवन के प्रसिद्ध प्रसंग को उद्धृत करते हुए अंतर्यात्री साधकों से वे कहते हैं:-

" xxx फिर व्यवहार में आप करेंगे-जैसा श्रीमद् राजचन्द्र ने कभी किया था। सौदा किया और जिसके साथ सौदा हुआ था, जो देनेवाला था diamonds (हीरे) ला करके,- उसने देखा, उसके दाम बढ़ गये। prices बढ़ गयीं। वह चिन्ता में था कि contract तो श्रीमद् के साथ पहले कर चुका। न दूं तो सौदे में अप्रामाणिक रहूँगा। देता हूँ तो इतने लाखों का मेरा नुकसान होता है।

(श्रीमद्) "उसकी खबर मिलते ही सुबह उठकर उसके घर जाते हैं, कागज़ जेब में रखकर। कहते हैं, 'चिन्ता में हो, मेरे भाई? तुम्हारी चिन्ता का कारण मैं लाया हूँ। यह सौदे का कागज है।' फाड़ दिया। (श्रीमद्) 'राजचन्द्र दूध पी सकता है, लहू नहीं पी सकता।' अब क्या कहेंगे आप? कैसा मूर्ख था? उसका क्यां दोष था? prices बढ़ गई, तो श्रीमद् राजचन्द्र का क्या नुकसान? उसका तो कोई गुनाह नहीं था। इतने पैसे का नुकसान किया! वह व्यवहारी आदमी नहीं था!

"इसलिये मैंने कहा कि व्यावहारिक मान्यताएं और सत्य का स्पर्श, आज की सुरक्षा की भावना, इसके लिये होनेवाला प्रयास, पुरुषार्थ, इनकी qualitative गुणात्मक भिन्नता रहेगी।

" संसार में रहते हुए, सत्य के रास्ते पर चलना हो तो आज जिसको संसार सफलता-विफलता कहता है, सम्मान-अपमान कहता है

श्री. सोभागभाई, श्री अंबालालभाई, श्री जुठाभाई, श्री पोपटभाई इत्यादि अनेक नाम-अनाम, स्वनाम धन्य समर्पित महामनाओं ने श्रीमद् महिमा-महत्ता प्रसारित करने का जो पुण्यकार्य किया, वैसा ही महत्कार्य श्रीमद्जी के जीवनोत्तर काल में डॉ. भगवानदास, पंडित श्री सुखलालजी-बेचरदास जी- डॉ. ए. एन. उपाध्येजी, डॉ. सरयूबेन-सुशीबेन आदि के लेखन-आलेखनों और सर्वश्री वसंतभाई खोखाणी, सुधीरभाई शाह, डॉ. आत्मानंदजी ....... आदि के प्रभावक-प्रवचनों आदि से भी, अपने प्रयोगपूर्ण समर्पित विश्व-जीवन के कारण, शायद बढ़कर किया है इन दो विभूतियों ने — सहजानंदघनजी (भद्रमुनि) और विमलादीदी ने। अपने स्वानुभव से यह लेखक निःशंकरूप से यह विनम्र विधान करता है।

दीदी विमलाजी का तो श्रीमद्जी के सर्व तत्त्व-प्रभावकों के प्रति भी कैसा और कितना आत्मीयता का, अनुमोदना का भाव सतत बहता रहा उसका अभी अभी का ही उदाहरण है गत पर्युषणपर्व में अहमदाबाद में सुज्ञ श्रीमद्-तत्त्व-प्रभावक श्री वसंतभाई खोखाणी द्वारा दिये गये 'गांधीजी-श्रीमद्जी पत्रव्यवहार' प्रवचनों की आबू बैठे टेप सुनकर दीदी के द्वारा की गई उनकी अनुमोदना और अभिवंदना। ठीक इसी प्रकार कुछ समय पर इस लेखक के भी 'बाहुबली दर्शन' डोक्युमेन्ट्री फिल्म' में बाहुबलीजी के अहिंसक युध्ध को श्रीमद्जी-गांधीजी तक ले आकर दर्शाने की चेष्टा को दूरदर्शन पर देखकर तुरन्त बेंगलोर ट्रंककॉल कर संप्रेषित की हुई अभिनंदना।

आत्मज्ञा दीदी की आत्मदृष्टा श्रीमद्जी की पहचान करानेवाली अंतर्दृष्टि को प्रणाम और प्रणाम उनकी उस सूक्ष्म-सुदूर झाँकनेवाली अनुमोदना-दृष्टि को भी, जो कि हम जैसे लघुजनों को भी छोड़ती नहीं। प्रणाम अनेकशः श्रीमद्जी सह दीदी और सहजानंदघनजी जैसे श्रीमद्-श्रद्धा-सुदृढ़ करनेवाले उपकारकों के प्रति। उन्हीं के श्रीमद्-समर्पण वंदना के शब्दों में —

" अनन्य आत्मशरणप्रदा सद्गुरु राज विदेह।
पराभक्तिवश चरण में, धरूं आत्मबलि एह॥ " (सहजानंद सुधा)

॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः॥

(प्रतापकुमार टोलिया
गुरुपूर्णिमा
बेंगलोर)
प्र

परिशिष्ट 8/33

विमल-कवित्त (सुश्री विमला दीदी के कुछ काव्य)

"क्या हूँ मैं ? कौन हूँ मैं ? न पूछो कोई मुझसे,
मृण्मय साज पर बजाया चिन्मय का इक गान हूँ मैं ॥"
मत पूछो मुझे कि, क्या हूँ मैं और कौन हूँ मैं ?
विश्वचेतना की वीणा का एक सहज स्पन्दन हूँ मैं,
विधाता की एक कविता हूँ, छंदों का निज छंद हूँ।
मिलो, मुझे सब मिलो, सुनो मेरे श्वासों में झंकृत गीत सुनो,
आकाश का आलंबन हूँ, रूपातीत का स्वरूप हूँ,
देखो, मुझे सब कोई दिखा, दर्पण हूँ मुझमें निज रूप देखो,

विरह में प्रच्छन्न मिलन की खुमारी आप को कब भायेगी ?
जुदाई की भ्रमजाल कब रे जायेगी ?
(विरहमां प्रच्छन्न मिलननी खुमारी तमने क्यारे गमशे ?
जुदाईनो भ्रम क्यारे मटशे ?)

— प्रशाबेन प्रति पत्र में (22-5-1966)
'विमल संस्मरणो' (गुजरात : 1995) पृ. 91

B/34

विमल-कवित : विमल वाणी

## आखिर क्यों?

क्यों? आखिर क्यों? मेरा क्या अपराध है?

ज़हर उगलने वाले उगलते हैं — स्पर्धा का, क्रोध का, द्वेष का;
और आँतें मेरी भुनी जाती हैं।

आग लगाने वाले लगा जाते हैं — नफ़रत की, हिंसा की बर्बरता की;
और कलेजा मेरा झुलसता है।

जवान मरते हैं, मारे जाते हैं — वियतनाम, कश्मीर हिन्दुस्तान में;
और कोख मेरी सूनी पड़ती है।

आँसू बहते हैं — बच्चों के, बूढ़ों के, अपाहिजों के;
और खून मेरी धमनियों में सूखता है।

क्यों? आखिर क्यों?

भूलता है मानव सत्य, प्रेम, करुणा;
और व्यथा से झुकता मेरा माथा है।

— "मन के उस पार" (1969/1989)

B/35

विमल-कवित्त : विमल वाणी

## कोई समझा तो दे!

ज़िन्दगी किस बला का नाम है?
कोई सयाना ज़रा हमें समझा तो दे!
कदम रखा है जब से दुनिया के बाज़ार में —
सौदा मौत का देखा है हम ने हर ओर में।
मौत से बचने के रस्ते हर कोई ढूंढता —
मन्दिर-मस्जिद में हर कोई है भागता —
क्या बचते रहने की कोशिश को जीना कहें?
कोई सयाना ज़रा हमें समझा तो दे!
हमेशा इन्सान को इन्सान से डरते देखा,
हमेशा हर इश्क को कशिश से कांपते देखा,
झूठ की तहज़ीब के नकाबों से झांकते देखा,
घमण्ड को इल्म-हुनर के झरोखों से झांकते देखा।
क्या छिपने-लुकने-झांकने की कोशिश को जीना कहें?
कोई सयाना ज़रा हमें समझा तो दे!

## अलबेली धारा

ज़िन्दगी है एक अलबेली बहती धारा,
मंज़िल के क़ायलों का यहां गुज़ारा नहीं;
इल्म-हुनर वाले तो ज़रा भी गवारा नहीं।
मौजे-बहर का जो आशिक़ हो,
ज़िन्दगी बस उस की क़ायल है।
मौजे-बोसो-कनार का जो घायल हो,
ज़िन्दगी बस उसकी क़ायल है।
मुकाम ढूंढनेवालों की मौत यहाँ,
फिलसुफ़ी के बन्दों की कब्र यहाँ,
नरगिसे-बीमार का नज़ारा है यहाँ,
आशिक़-मिज़ाजों का बस गुज़ारा है यहाँ॥

—"मन के उस पार" (1969/1989)

B/36

विमल-कवित्त : विमल वाणी

सर्व पावन मंगल घटना।

देह में रहते हुए
विश्वभर में व्याप्त होने की प्रतीति
कितनी अद्भुत है!

'मम'-भाव से सर्वथा अस्पृष्ट
'अहमस्मि' प्रत्यय कैसा विलक्षण है!

'अस्मत्' प्रत्यय तो है
'युष्मत्' प्रत्यय उठता ही नहीं!
सर्वतामयी चेतना ने देह का कब्जा लिया है?
या अहं-चेतना 'सर्व' में व्याप्त हुई है?
जो भी है – पावन मंगल घटना है!
जागृति-स्वप्न-सुषुप्ति का अनुबन्ध
दैहिक जीवन से गूँथा गया है!
निरपेक्ष द्रष्टित्व सार्वभौम है,
न दृश्य, न द्रष्टा
द्रष्टि की निष्कम्प ज्योति!
उसका प्रज्वलित रहना जीवित होने का आशय!

अवधान उसका आलोक,
आल्हाद उसका सौरभ,
आनंद उसकी परिणति!

आलोक, आल्हाद, आनंद
व्यक्तित्व के मृत्यु ने घट को
अमृत कलश बना न दिया है!

B 37

## विमल-कवित्त : विमल वाणी

(राग असली बहार)

घट से जीवनरस छलके...!

[परा-पश्यन्ति-मध्यमा-वैखरी वाणी का ऊर्ध्वरूप जीवन व्यवहार में]

जीवन की इस मधु संध्या में
घटसे जीवनरस छलके।
चित्तमें संचित जीवनसौरभ
सुरभित काया को कर दे
दो नयनों की मधुशाला में
पलकों की प्याली छलके.... जीवन सं०

मौन निलय में 'परा' मात के
मुग्ध नाद बिन्दु छलके,
'पश्यन्ति' में हो अभिसिंचित
मुखरित 'मध्यम' में गूंजे....! जीवन सं०

स्फुट 'वैखरी' में अमृतधारा
रसमय संजीवक प्रकटे,
दशेन्द्रियों से छलके हरिरस
संध्या हरिमय दीप्ति धरे...! जीवन सं०

जीवन की इस मधु संध्या में जीवन सं०
घटसे जीवनरस छलके,
विमल विलास रसेश्वर हरि का
जन्म मृत्यु महारास बने...! जीवन सं०

—मौन के अनुनाद